मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७७
सितम्बर २००७

जीवन एक उत्सव है,
एक गीत है, एक संगीत है ।
जीयो तो ऐसे जीयो कि
जीवन महक उठे ।

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

ब्यावरा जि. राजगढ़ (म.प्र.) के बाढ़पीड़ितों में वस्त्र एवं भोजन-प्रसाद पैकेटों का वितरण तथा रतननगर जि. चुरू (राज.) में अनाज-वितरण।

सिरसिला जि. करीमनगर (आ.प्र.) के गरीबों में साड़ियों व धोती-शर्ट का वितरण तथा अम्ब जि. ऊना (हि.प्र.) के दरिद्रनारायणों में बर्तनों का वितरण।

सिलीगुड़ी जि. दार्जलिंग में संकीर्तन यात्रा में व्यसनमुक्ति का संदेश देते विद्यार्थी तथा दादरी जि. गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.) के अस्पतालों में फल एवं सत्साहित्य वितरण।

जालन्धर (पंजाब) में सामूहिक हवन कार्यक्रम का आयोजन तथा गोधरा (गुज.) में विद्यार्थियों द्वारा निकाली गयी संकीर्तन यात्रा।

ऋषि प्रसाद
मासिक पत्रिका

वर्ष : १८ अंक : १७७
सितम्बर २००७ मूल्य : रु. ६-००
भाद्रपद-आश्विन, वि.सं.२०६४

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
ऋषि प्रसाद से संबंधित कार्य के लिए फोन नं. : (०७९) ३९८७७७१४, ६६११५७१४.
अन्य जानकारी हेतु फोन : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
: ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : विनय प्रिंटिंग प्रेस, ''सुदर्शन'', मिठाखली अंडरब्रीज के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद - ३८०००९. गुजरात
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें। पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

अनुक्रम

SONY
'संत आसारामजी वाणी' प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे।

'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे व रात्रि ९-५० बजे।

'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी' दोप. १२-२० बजे। **आस्था इंटरनेशनल** भारत में दोप.३-३० से यू.के. में सुबह ११.०० बजे से।

रोज सुबह ६-३० बजे।

दो निर्मल नेत्र

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम् ।
यस्य नास्ति नरः सोऽन्धः कथं न स्याद् अमार्गगः ॥

'सत्संग और विवेक - ये दो प्राणी के निर्मल नेत्र हैं । जिस मनुष्य के पास ये नहीं हैं वह अंधा है । वह कुमार्ग पर कैसे नहीं जायेगा ?'

(गरुड़ पुराण : ४९.५७)

कष्टों, मुसीबतों, गर्भों व नरकों में क्यों नहीं पचेगा ? पचेगा, पचेगा, पचेगा ! पक्की बात है ! भगवान ब्रह्माजी भी उसको नहीं बचा सकते ।

सत्संग तथा विवेक ये मलरहित नेत्र हैं और चर्मनेत्र मलसहित हैं; कितना भी सुरमा आँजो, कितना ही नेत्रबिंदु डालो फिर भी इनमें से मल निकलता ही रहता है, कीचड़ निकलता ही रहता है । किसी सुंदरी को देखा और विकार पैदा हो गया, किसी चीज-वस्तु को देखा और मुँह में पानी आ गया तो यह दृष्टि निर्मल नहीं है । लेकिन हरि और गुरु की कृपा से जब विवेक जगता है तो निर्मल परमात्म-सत्ता के योग का अनुभव हो जाता है ।

सत्संग और विमल विवेक ये दो नेत्र जिसके पास नहीं हैं वह आदमी बाहर से चाहे कितना भी बड़ा धनाढ्य, बड़ा सत्ताधीश, बड़ा पढ़ाई-लिखाई का धनी, बड़ा यशस्वी, तपस्वी कुछ भी दिखे लेकिन दुःखों से पिंड नहीं छूटेगा और ये दो नेत्र मिल गये तो कितना भी छोटा दिखे दुःख उसको छुएगा नहीं । सारी पृथ्वी के लोग मिलकर भी उसको दुःखी, अशांत, परेशान नहीं कर सकते । शरीर को थोड़ा कष्ट दे सकते हैं लेकिन उसको दुःखी नहीं कर सकते । सुकरात को कष्ट दिया विरोधियों ने, जहर दे दिया और मंसूर को सूली पर चढ़ा दिया लेकिन दुःखी नहीं कर सके क्योंकि निर्मल नयन थे । मीरा के जेठ विक्रम राणा ने राज्यसत्ता का उपयोग करके, कूटनीतियों का उपयोग करके मीरा को सताने में कुछ बाकी नहीं रखा लेकिन मीरा को दुःखी नहीं कर सका । रावण ने विभीषण को सताने में कमी नहीं रखी, यहाँ तक कि लात भी मार दी पर विभीषण को दुःखी नहीं कर सका । अभी तक विभीषण जीवित हैं, अमर हैं । (सप्तचिरंजीवियों में उनका नाम आता है ।)

संत कबीरजी ने इशारा किया :

जब लग नहीं विवेक मन, तब लग लगै न तीर ।

सत्संगश्च विवेकश्च निर्मलं नयनद्वयम्...

सत्संग और विवेक ये दो आँखें जिसके पास नहीं हैं उसके पास चाहे दस शीश हों, बीस आँखें हों फिर भी वह अंधा है क्योंकि जो संसार प्रतिपल नाश हो रहा है, बदल रहा है वह सच्चा लगेगा और जो **आदि सचु जुगादि सचु ॥ है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥** - वह परमात्मा उसको पराया लगेगा । आप ईश्वर का सुमिरन करते हो, धन्यवाद... ! मंदिर में, मसजिद में, पूजास्थलों में जाते हो, शाबाश... ! लेकिन सारे मंदिरों, मसजिदों, चर्चों, पूजाघरों में जाने का फल यही है कि देर-सवेर आप अपने दिल-मंदिर में आ जाओ । दिल-मंदिर का देवता कभी आपको छोड़ता नहीं और संसार कभी रहता नहीं । बचपन रहा क्या ? बह गया । दुःख बह गया, सुख बह गया । निर्मल विवेक नहीं है इसलिए बहनेवाले को रहनेवाला मान रहे हैं और रहनेवाले का पता ही नहीं । हकीकत में परमात्मा नित्य है, अभी है

और वही हमारे साथ था, है और रहेगा । संसार अनित्य है, परिवर्तनशील है; राग-द्वेष, चिंता, भय, क्लेश, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि देनेवाला है लेकिन नयन न खुलने के कारण उसीमें फँसे जा रहे हैं । 'इतना पढ़ लूँ, इतना सीख लूँ, इतना पा लूँ फिर सुखी हो जाऊँगा...' - ऐसा करके कई दुःखी हो के मर गये । एक-दो नहीं, करोड़ों-करोड़ों गये, तबाह हो गये । फिर भी इस निर्मल विवेक की कमी के कारण दूसरे भी उसी रास्ते भागे जा रहे हैं ।

एक भूला दूजा भूला भूला सब संसार ।
बिन भूला इक गोरखा जिसको गुरु का आधार ॥

भूल मिटा दे तो दुःख गये ! कोई कहता है : भगवान ब्रह्माजी बड़े हैं । कोई कहता है : भगवान विष्णु बड़े हैं तो कोई कहता है : धनी बड़ा है, सत्ताधीश बड़ा है परंतु सबसे बड़ी है भूल, जो सबको नचा रही है ।

निर्मलं नयनद्वयम्... इस भूल को मिटाने में सत्संग-विवेकरूपी निर्मल नेत्र ही सक्षम हैं । अन्य कोई यह भूल नहीं मिटा सकता । कोई किताब, पोथे रट-रटा के आपकी भूल गहरी कर सकता है, मिटा नहीं सकता ।

बोले : पुण्य के बल से विवेक आता है क्या ?

संत तुलसीदासजी कहते हैं :

तुलसी हरि गुरु करुणा बिना
बिमल बिबेक न होई ।

पुण्य के बल से विवेक नहीं होता । विवेक के बल से आदमी पुण्य की तरफ बढ़ेगा । क्रिया के बल से विवेक नहीं होता । विवेक के बल से क्रिया में चार चाँद लगते हैं । अंतःकरण शुद्ध होने से विवेक नहीं होता । विवेक से अंतःकरण शुद्ध होता है । अतः अंतःकरण की शुद्धि का फल विवेक नहीं है, धन का फल विवेक नहीं है, पढ़ाई का फल विवेक नहीं है, चतुराई का फल विवेक नहीं है । विमल विवेक ईश्वरदत्त प्रसाद है और यह गुरुकृपा से, संतकृपा से, सत्संग से सुविकसित होता है ।

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥

(रामचरित. बा.कां. : २.४)

क्या खाना, क्या न खाना आदि सामान्य विवेक तो पशु-पक्षी को, जीवाणु को भी है लेकिन अविनाशी क्या है और नाशवान क्या है ? शाश्वत सुख क्या है और नश्वर क्या है ? - ऐसा विवेक सत्संग से होता है । अब सत्संग से विवेक को प्रखर करो । विवेक प्रखर होगा तो एक अनित्य तत्त्व दिखेगा, दूसरा नित्य दिखेगा । अनित्य बदल रहा है, नष्ट हो रहा है । जो 'मैं' है, असलियत है वह नित्य है, एकरस है । उसमें भूख नहीं है, प्यास नहीं है, जन्म नहीं है, मृत्यु नहीं है, काम नहीं है, क्रोध नहीं है, शोक नहीं है, मोह नहीं है, चिंतन नहीं है, बंधन नहीं है । उसको बोला जाता है आत्मा और वह हमारा साथ कभी छोड़ता नहीं है । **'मन इन्द्रिय जाही न जान सके, नहीं बुद्धि जिसे पहचान सके ।'** ऐसे आत्मा को जानने का विवेक सत्संग से विकसित होगा । फिर आपका यह अनुभव होगा :

गुरु कीन कृपा भव त्रास गयी,
मिट भूख गयी छुट प्यास गयी ।
नहीं काम रहा नहीं कर्म रहा,
नहीं मृत्यु रहा नहीं जन्म रहा ॥

जो कभी आपका साथ न छोड़े उसको बोलते हैं आत्मा-परमात्मा और जो आपका साथ न दे उसको बोलते हैं शरीर व संसार । आपका और शरीर का, संसार का नित्य संयोग-वियोग है । जहाँ संयोग होता है वहाँ वियोग है लेकिन अपने आत्मा-परमात्मा से कभी वियोग हुआ क्या ? अपने मैं से कभी अलग हुए क्या ? तो परमात्मा से आपका नित्ययोग है । यह बात कृपा करके मान लो, आपका विवेक यूँ खिल जायेगा । जैसे

सूरज उदय होते ही सूर्यमुखी खिल जाती है, ऐसे ही यह बात पकड़ ली तो आपका विवेक यूँ खिल जायेगा ! सारे सारों का सार मैं अभी आपको बता रहा हूँ कि केवल यह विमल विवेक जगा दो ।

ईश्वरप्राप्ति जल्दी करनी है तो समय निकालकर विमल विवेक जगाओ और ईश्वरप्राप्ति करो। **श्रद्धा, एकाग्रता, अनासक्ति, ब्रह्मचर्य और सच्चरित्रता केवल ये पाँच साधन आपका विमल विवेक जगाकर ईश्वर से बिल्कुल मिला देंगे ।** पक्की बात है । लेकिन इन साधनों को पुष्ट करने के लिए सत्संग चाहिए । भगवान के नाम का जप और सत्संग - ये विमल विवेक को प्रखर कर देंगे ।

बिनु सतसंग बिबेक न होई ।

विमल विवेक के बिना परम मंगल नहीं हो सकता । भागवत में कथा आती है : प्रचेताओं का विवेक जगा और उन्होंने तपस्या की । शिवजी प्रकट हुए और शिवजी की कृपा से विष्णुजी के दर्शन हुए। फिर भी परम मंगल तो बाकी रह गया । विष्णुजी ने कहा : 'देखो, प्रचेताओ ! तुम बोलते हो जिसमें हमारा भला है वही दो तो तुम्हें देवर्षि नारदजी का सत्संग मिलेगा और तुम्हारा विमल विवेक जगेगा तो आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार हो जायेगा ।' सत्संग और विमल विवेक की कैसी महिमा है !

आप विमल विवेक जागृत रखो । क्रिया की प्रधानता से सीमित फल होता है, विवेक की प्रधानता से लौकिक फल भी बड़ा मिलता है और अलौकिक परमात्मा भी मिल जाता है । विवेक की आखिरी पराकाष्ठा यह है कि आत्मा अविनाशी है, अमर है, ज्ञानस्वरूप है, प्रेमस्वरूप है, नित्य है, सुखस्वरूप है और जगत इससे विपरीत है इसका अनुभव हो जाय। हमारा परम हितैषी परमात्मा ही हमारा आत्मा होकर बैठा है यह ज्ञान पक्का हो जाय तो बेड़ा पार हो जाय ! ❒

योगी हो या भोगी, ब्रह्मचर्य है जरूरी

साधु हो या संसारी, योगी हो या भोगी- दोनों को अपना उद्देश्य पूर्ण करने के लिए आरोग्यमय तन तो आवश्यक है ही। इसलिए कहा गया है कि पहला सुख है स्वस्थ शरीर । नीरोगी शरीर में ही बलवान मन, पवित्र बुद्धि का वास होता है । साधु को तो स्वस्थ मन के लिए स्वस्थ तन और उसके लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता रहेगी परंतु संसारी को भी भोगशक्ति के लिए तंदुरुस्त शरीर और उसके लिए ब्रह्मचर्य की जरूरत रहेगी ।

भोजन का पूरा आनंद लेने के लिए भूख आवश्यक है । भूख लगने पर ही भोजन में असली स्वाद का अनुभव होता है । इसी प्रकार अब्रह्मचर्य में भासित आनंद का आधार भी ब्रह्मचर्य है। जिस व्यक्ति ने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया है वह विषयानंद पाने का भी अधिकारी नहीं रहता । यदि कोई ऐसा करता है तो यह कर्जा लेकर दानवीर बनने का प्रयत्न करने जैसा है । शरीर की धातुओं का संचय किये बिना उन्हें बहा-बहाकर वह वीर कब तक खैर मनायेगा ? इस प्रकार विषयानंद की अनुभूति के लिए भी भोगी को ब्रह्मचर्य-पालन की आवश्यकता रहती है ।

चाहे योगी की तरह ब्रह्मानंद पाना हो, चाहे भोगी की तरह विषयानंद, आनंद के मूल ब्रह्मचर्य का पालन तो करना ही पड़ेगा ।

किन्हीं ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष का सत्संग-सान्निध्य मिल जाय तो आनंद का ऐसा खजाना हाथ लग जाता है कि विषयानंद की गुलामी कब छूटी यह व्यक्ति को पता ही नहीं चलता। विषयानंद भी पाने की जिसमें पूरी लायकात नहीं, वह सत्संग-ध्यान से ब्रह्मानंद की झलकें पाकर परमानंद के पथ का पथिक बन जाता है । ❒

रुचि और सद्भाव

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक होती है रुचि और दूसरा होता है सद्भाव। संसार की रुचि धीरे-धीरे संसार का गुलाम बनाती है और सद्भाव धीरे-धीरे सत्स्वरूप ईश्वर से मिला देता है। जहाँ सद्भाव होता है वहाँ कदम-कदम पर प्रेरणा मिलती है, सद्बुद्धि चमकती रहती है। सद्भाव सत्सुख को चमकाता है, सत्प्रेरणा को चमकाता है और सत्यस्वरूप से मिला देता है। रुचि भोगों में फँसाती है और सद्भाव योग करा देता है।

सन् १९१९ में जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में हत्याकांड किया। उसका नाम उस समय लोगों में कुप्रसिद्ध था। हंटर कमेटीवालों ने उसकी खूब भर्त्सना, निंदा की और उसका पद गया। अंत में सन् १९२१ में उसको पक्षाघात (लकवा) हो गया। इतने से ही कुदरत का कोप रुका नहीं, उसको गठिया हो गया। मरने से कुछ दिन पहले जब कुछ सूझबूझ थी, गठिया था तो उसने घोषणा की : 'जो अपनेको मुझ जैसा चतुर और अहंकारी मानते हैं, जो कुछ भी करते न डरते हैं न लजाते हैं उनका क्या अंत हो सकता है - यह किसीको जानना हो तो इन क्षणों में मुझसे जान ले।'

डायर की चतुराई उसके साथ क्या अन्याय कर बैठी! इच्छापूर्ति के रास्ते चलकर बड़ा बननेवाला कितना दुःखी होकर मरा!

जो कुछ भी करके रुचिपूर्ति करते हैं, चाहे वह मुसोलिनी हो, चाहे नेपोलियन बोनापार्ट जैसा साहसी आदमी हो, चाहे कोई भी हो उसकी सारी योग्यताओं का नाश हो जाता है। धर्म अहंकार व हलकी रुचि को नियंत्रित करता है। **यतो धर्मः ततो जयः।** जहाँ धर्म और अनुशासन जीवन में रहें वहाँ सच्ची विजय है। जहाँ धर्म और अनुशासन नहीं हैं, अहंकार और वासना पोसने का महत्त्व है वहाँ रुचिपूर्ति में मानवता का और अपने-आपका ह्रास हो जाता है लेकिन सद्भाव से मानवता का व अपने-आपका ऐसा मंगल होता है जैसे स्वामी विवेकानंदजी, संत कबीरजी, संत रोहिदासजी, मीराबाई व शबरी के हृदय में सद्भाव था तो वे खुद भी तर गये और उनके पदचिह्नों पर चलनेवाले लोग भी तर जाते हैं।

संसार की रुचि, आसक्ति जीव को तुच्छ बना देती है। उसे मिटाने के लिए सद्भाव कर दे। सद्भाव माने दूसरों के मंगल का भाव। दूसरों के मंगल में आपके शरीर का मंगल भी आ जाता है। आपका शरीर भी 'दूसरा' (आपसे अलग) ही है क्योंकि आप शरीर नहीं हैं। शरीर को स्वस्थ रखना भी सद्भाव है लेकिन 'शरीर से मजा लूँ, फिर दूसरे का जो कुछ हो' - यह रुचि हो गयी। 'पत्नी मेरे काम आये, बच्चे मेरे काम आयें, पिता मेरे काम आयें...' - यह रुचि हो गयी। हमारी योग्यता सभीके काम आये- यह सद्भाव हो गया। सद्भाव उदार है, दाता है और दातामय बना देता है। रुचि स्वार्थ है। सद्भाव है तो मंदिर में भी जायेगा तो देनेवाले को भी चावल के चार दाने चढ़ा देगा, दो फूल चढ़ा देगा, गंगाजल चढ़ा देगा, **'नमः शिवाय'** कहकर कोई पानी का लोटा चढ़ा देगा। भगवान शिव को क्या टोटा है ? लेकिन सद्भाव व्यक्त करने के लिए कुछ तो क्रिया में आयेगा ही। सद्भाव इतना सज्जन है कि भगवान को भी दिये बिना नहीं रहता और रुचि इतनी

गुलाम है कि भगवान को और गुरु को भी सताये बिना नहीं रहती।

सद्भाव से सद्बुद्धि विकसित होती है, परदुःखकातरता आती है, आत्मविश्रांति मिलती है और परमात्म-प्राकट्य होता है। रुचिपूर्ति में लगने से असत्भाव की वृद्धि होती है, स्वार्थभाव की वृद्धि होती है और मनुष्य पशु से भी बदतर हो जाता है। पशु तो पशुता काटते-काटते मनुष्यता की तरफ आता है परंतु जो रुचि का गुलाम है वह मनुष्यता का गला घोंटते-घोंटते पशुत्व की तरफ जाता है। अरे! पशु का शरीर भी नहीं मिलता तो पिशाच हो जाता है। पिशाच के शरीर की भी लायकी नहीं रहती तो पेड़-पौधा बन जाता है। पेड़-पौधे के शरीर की भी लायकी नहीं है तो 'श्री वाल्मीकि रामायण' के अनुसार वह जड़ीभाव को प्राप्त होता है।

...तो अब रुचिपूर्ति की चाह को मिटायें और सद्भाव को जगायें। रावण तथा हिरण्यकशिपु दोनों इतनी तपस्या के और सुवर्ण के नगर के धनी किंतु रुचिपूर्ति-पूर्ति में इतने शोषक, क्रूर हो गये कि भगवान को नरसिंह अवतार लेकर उन्हें मारना पड़ा, रावण को रामावतार लेकर मारना पड़ा। कृष्ण अवतार लेकर कंस को मारना पड़ा। लेकिन भगवान राम और लक्ष्मणजी ने सद्भावसम्पन्न ऋषि विश्वामित्रजी की चरणचंपी की है। भगवान श्रीकृष्ण ने सांदीपनि ऋषि की सेवा की है। सांदीपनिजी सद्भावसम्पन्न थे, गुरु के दैवी कार्य में लग जाते थे। उनके गुरु ने कहा : ''बेटा! तू तो मेरा शिष्य है लेकिन भगवान तेरे शिष्य बनेंगे।''

सांदीपनिजी की रुचि नहीं थी लेकिन उनके सद्भाव के प्रभाव से भगवान उनके चेले बन गये। भगवान को शिष्य बनाने की ताकत सद्भाव में है। भगवान को सखा बनाने की ताकत सद्भाव में है। भगवान को अपने आत्मरूप में देखने की ताकत सद्भाव में है। अपनी अच्छी मानसिकता, सद्बुद्धि और जीवन का विनाश करने की ताकत विकारी रुचि में है। सद्भाव और चाह - इन दोनों में जो अंतर है उसे जानकर धर्म और नीति का आश्रय लें, सद्भाव का आश्रय लें। ❑

अमृतवचन

* शरीर अंदर के आत्मा का वस्त्र है। वस्त्र को वस्त्र पहननेवाले से अधिक प्यार मत करो।
* बल दूसरों के हित के लिए है, ज्ञान अपने लिए है और विश्वास परमात्मा से संबंध जोड़ने के लिए है।
* हृदय को इतना कठोर बनाओ कि जगत का कुछ भी उसमें न घुसे और हृदय को इतना कोमल बनाओ कि प्रभु के रंग में रँग जाय।
* 'आज नहीं कल' यह आलसी नामर्दों का रुदन है व 'कल नहीं अभी' यह उद्यमी नरकेसरियों की गर्जना है।
* परमात्मा तुमसे दूर नहीं, पृथक् नहीं फिर भी उससे अनभिज्ञ हो और अपनेको चतुर समझते हो ?
* गूगल का धूप करने से रोग व अभिशाप से रक्षा होती है।
* उठो, साहसी बनो, शक्तिमान बनो। आपको जो बल व सहायता चाहिए वह आपके भीतर है।
* सिर को सूर्य के ताप से बचाओ और हृदय को पाप से बचाओ।
* दीक्षारहित जीवन विधवा के श्रृंगार जैसा है। - परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

वैदिक उपदेश : सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्वथा प्रासंगिक

वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ।

'वेद धर्म के आधार हैं ।' **(मनुस्मृति : २.६)**

वेदप्रणिहितो धर्मः ।

'वेदों ने जिन कर्मों का विधान किया है वे धर्म हैं ।' **(श्रीमद्भागवत : ६.१.४०)**

वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ।

'वेद धर्म के प्रकाशक हैं ।' **(मनुस्मृति : ५.४४)**

वेद धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष- चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने के अद्वितीय साधन हैं । ये कर्म और ज्ञान दोनों मार्गों का निर्देश एवं उपदेश करते हैं ।

वेदो नारायणः साक्षात् ।

(श्रीमद्भागवत : ६.१.४०)

नारायणस्वरूप भगवान वेद ने सामाजिक सुव्यवस्था, व्यावहारिक संतुलन एवं शांतिमय जीवनयापन के लिए जो अनेक महत्त्वपूर्ण उपदेश दिये हैं वे सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सर्वथा प्रासंगिक हैं । जैसे,

(१) केवलाघो भवति केवलादी ।

'केवल अपने भोगों की पूर्ति करनेवाला केवल पापरूप होता है ।' **(ऋग्वेद : १०.११७.६)**

जो केवल अपना ही उदर-पोषण करता है, अपने ही लिए परधन का संचय करता है, अपनी ही सुविधा का ख्याल रखता है वह केवल पाप का भोग करता है ।

समस्त वस्तुएँ ईश्वर की हैं, ईश्वर द्वारा नियंत्रित हैं । मनुष्य के लिए उनमें से केवल उतना ही अंश उपयोग में लाने योग्य है, जो उसके सत्कर्म से उपार्जित है और उसकी आवश्यकतामात्र के लिए है । उससे अधिक वस्तु दूसरे की है, उसे अपने उपभोग में लाना चोरी है । ऐसी स्थिति में अपने निमित्त ही वस्तु का उपभोग करनेवाला पाप का ही भोग करता हैं । इसे ही भगवान ने 'गीता' में स्पष्ट शब्दों में कहा है :

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।

'जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करने के लिए ही अन्न पकाते हैं वे तो पाप को ही खाते हैं ।' **(गीता : ३.१३)**

'श्रीमद्भागवत' में महर्षि व्यासजी ने इस बात को और स्पष्ट करते हुए बतलाया है :

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥

'मनुष्यों का अधिकार केवल उतने ही धन पर है जितने से उनकी भूख मिट जाय (आजीविका चले) । इससे अधिक सम्पत्ति को जो अपनी मानता है वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिए ।'

(७.१४.८)

(२) अक्षैर्मा दीव्यः ।

'जुए के पासों से मत खेल ।'

(ऋग्वेद : १०.३४.१३)

वेद ने द्यूतक्रीड़ा नहीं करने का सदुपदेश दिया है । जुआ खेलने का जो दुष्परिणाम होता है वह महाभारत, पुराण आदि में नल, युधिष्ठिर आदि के वृत्तांतों द्वारा बतलाया गया है। द्यूत में विजय से तात्कालिक उल्लास मनानेवाले दुर्योधन आदि का भी परिणाम में सर्वनाश ही देखा गया है ।

(३) कृषिमित् कृषस्व ।

'तू कृषि किया कर । परिश्रम से भूमि में कृषि कर ।' **(ऋग्वेद : १०.३४.१३)**

कृषिकर्म अर्थात् सहज स्वकर्म - स्वाभाविक कर्म अर्थात् जिसका जो कर्तव्य है वही सत्कर्म उसे तत्परता से करना चाहिए। अपने-अपने स्वाभाविक कर्मों में तत्परता से लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त हो जाता है । इसीलिए 'भगवद्गीता' में भी सहज कर्म की महत्ता बतायी गयी है :

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।

'हे कुन्तीपुत्र ! दोषयुक्त होने पर भी सहज कर्म को नहीं त्यागना चाहिए ।' **(गीता : १८.४८)**

अच्छा दिखनेवाला परकर्म कर्तव्य नहीं है । उसका परिणाम प्रतिकूल होता है ।

अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर, सहज-स्वाभाविक जीवन जीनेवाले व्यक्ति से सब लोग प्रेम करते हैं और अपने कर्तव्य से भागनेवाले, दिखावटी व्यक्ति दूसरों की तो क्या अपनी ही नजरों में गिर जाता है ।

(४) वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।

'सत्कर्म द्वारा उपार्जित धन से पूर्ण संतोष कर खूब प्रसन्न रहें ।' **(ऋग्वेद : १०.३४.१३)**

संतोषरूपी अमृत को पीकर तृप्त, शांत पुरुष को जो सुख मिलता है वह सुख धन के पीछे जहाँ-तहाँ दौड़नेवाले अशांत व्यक्ति को कहाँ नसीब होता है ? इसके पीछे भी यही भाव है कि अपने अंश में जितना धन हो, उतने में ही मग्न रहना चाहिए। दूसरे के अंश को कभी नहीं हड़पना चाहिए ।

(५) इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।

'हे वर और वधू ! आप दोनों इस गृहस्थ आश्रम में ही रहें, परस्पर पृथक् न हों । सम्पूर्ण आयुष्य भोगें ।' **(ऋग्वेद : १०.८५.४२)**

दाम्पत्य सूत्र में आबद्ध वर-वधू को संबोधित कर इस मंत्र में कहा गया है कि वधू और वर कभी भी झगड़ों, तलाक आदि द्वारा एक-दूसरे से वियुक्त न हों । प्रेमपूर्वक अपने घर में रहें, एक-दूसरे को समझकर चलें और एक-दूसरे की उन्नति में सहायक हों ।

(६) सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

'आप परस्पर मिलकर चलें, परस्पर मिलकर स्नेहपूर्वक वार्तालाप करें। आपके मन समान विचारधारावाले होकर ज्ञानार्जन करें ।'

(ऋग्वेद : १०.१९१.२)

मनुष्य एक विशिष्ट सामाजिक प्राणी है । समाज परस्पर सहयोग, सद्भाव और सुंदर संबंध से सुचारुरूपेण चलता है । आज विश्व में इसी सहयोग और सद्भाव के अभाव में अशांति का वातावरण व्याप्त है ।

हम साथ-साथ चलें । एक मन से परस्पर सहयोग की बातें करें । विश्व को एक कुटुंब समझें और सभी सर्वत्र प्रसन्न रहें । इस वैदिक उदात्त भावना का वस्तुतः आदर करते हुए उसे अपने आचरण में लायें । □

संत एकनाथजी महाराज की वाणी

जे सुख संतसज्जनांचे पायीं।
तें सुख नाहीं आणिके ठायीं।
तुकितां या सुखाचेनी तुकें।
पैं वैकुंठ झाले फिकें।।

अर्थ : जो सुख संतजनों के श्रीचरणों में (उनके सत्संग-सान्निध्य में) होता है, वह त्रिलोकी में नहीं होता। वैकुण्ठ का सुख भी इस सुख की तुलना में फीका पड़ जाता है।

द्वंद्वातीतो भव !

- पूज्य बापूजी

चाहे आप किसी भी वर्ण के हों, किसी भी जाति के हों, किसी भी आश्रम के हों; चाहे कोई भी व्यवसाय करते हों, नौकरी करते हों अथवा पढ़ते हों, ये चार सद्‌गुण आपके जीवन में अत्यंत आवश्यक हैं ।

पहला सद्‌गुण है कि आपके जीवन में द्वंद्व-सहिष्णुता होनी चाहिए । द्वंद्व-सहिष्णुता का अर्थ है - सुख-दुःख, यश-अपयश, मान-अपमान, अनुकूलता-प्रतिकूलता, हानि-लाभ, निंदा-स्तुति इन सब द्वंद्वों में तटस्थ रहना ।

आप इन द्वंद्वों में तटस्थ रहने की कोशिश करिये । कैसी भी प्रतिकूलता आ जाय आप उसमें धैर्य न खोयें । कैसी भी अनुकूलता आ जाय आप उसके गुलाम न बनें । कैसा भी विरोध हो जाय आप अपनी समता का, समझ का सिंहासन छोड़कर गिर न जायें ।

आप अपने जीवन में सहिष्णुता लायें, द्वंद्वों के समय समता लायें । दुःख आ जाय तो उस समय हृदय में धैर्य लायें, सुखों के समय त्याग लायें, प्रतिकूलता के समय अनुकूलता की भावना करें तो परिस्थितियों के सिर पर पैर रखने की ताकत आ जायेगी ।

व्यवहार में आप तटस्थ रहिये, हृदय को ठोस रखिये, हृदय को पिघलने मत दीजिये और परमार्थ में हृदय को जरा भी ठोस मत रखिये । जैसे मोम पिघली हुई हो और उसमें रंग डाल दें तो उसकी रग-रग में फैल जाता है फिर वह रंग निकालना मुश्किल हो जाता है । इसी तरह जब आप भगवान की बंदगी करते हों, जप-ध्यान करते हों, सेवा-सुमिरन करते हों, ईश्वर-चिंतन करते हों, तब हृदय को मोम की तरह पिघला दीजिये, द्रवीभूत कर दीजिये ताकि हृदय में भगवद्भाव भर जाय, आपके चित की वृत्ति ईश्वराकार हो जाय लेकिन हम करते क्या हैं कि व्यवहार में हृदय को द्रवित कर देते हैं और भक्ति में ठोस रहने देते हैं । सत्संग के समय हृदय को मोम की नाईं पिघला दो, द्रवीभूत कर दो ताकि आपके द्रवित हृदय में रब का रंग भर जाय ।

संत कबीरजी ने कहा है :

साहेब है मेरो रंगरेज चुनरी मोरि रँग डारी ।
स्याही रंग छुड़ाय के दियो भक्ति को रंग ।
धोये से छूटे नहीं दिन-दिन होत सुरंग ।।

सच्चा रंगरेज तो वही परमात्मा है । संत तुकारामजी महाराज भी उस परमात्मा को बोलते हैं : 'रंगनाथ' । वह साहेब, वह परमात्मा, वह रंगनाथ अपने रंग से हमको रँग दे, इसलिए हमें भक्ति, ध्यान और सत्संग के समय हृदय द्रवीभूत करना चाहिए और व्यवहार के समय हृदय तटस्थ रखना चाहिए । इससे द्वन्द्वातीत जो ऊँचा अनुभव है, उसे पाना आसान हो जायेगा ।

लाभ की इच्छावाले को हानि का भय रहता है, मान की इच्छावाले को अपमान का भय रहता है, इज्जत की इच्छावाले को बेइज्जती का खटका रहता है, पहलवान को हारने का खटका रहता है, ऐसे अनेक प्रकार के कोई-न-कोई खटके रहते ही हैं । खटका तो शरीर-मन में रहेगा ही लेकिन जहाँ कोई खटका नहीं पहुँचता है वहाँ जाने की कला का नाम है - द्वंद्वातीत हो जाना ।

जीवन में दूसरा सद्‌गुण होना चाहिए वेग-सहिष्णुता का । कभी काम का वेग आयेगा तो कभी क्रोध का, कभी कपट का वेग आयेगा तो कभी हिंसा का । क्रोध का वेग आया और किसीको कुछ सुना दिया, कपट का वेग आया और बहाना बनाकर चल दिये, हिंसा का वेग आया और कुछ उठाकर किसीको मार दिया लेकिन ये वेग चले जाने पर फिर पछताना पड़ता है। गलती तो थोड़ी-सी होती है लेकिन इज्जत सदा के लिए कम हो जाती है । इसलिए जब ये वेग आयें तब आप इनसे अपनेको सावधान रखें, अपनेको बचायें । क्रोध का, कपट का, वैर का, काम आदि का वेग तो आयेगा लेकिन उस समय आप अगर उनसे थोड़े सावधान रहेंगे तो बच जायेंगे । कर्म से कर्म को काटो, कर्म से कर्म बढ़ाओ मत ।

तीसरा सद्‌गुण है परोत्कर्ष-सहिष्णुता । दूसरे का उत्कर्ष देखकर हृदय में ईर्ष्या होती है, दुःख होता है । जिसका उत्कर्ष होता है वह तो सुखी होता है लेकिन जीवन में अगर परोत्कर्ष-सहिष्णुता का सद्‌गुण नहीं है तो हम उसका उत्कर्ष देखकर अशांत होते रहते हैं । ऐसे में ज्ञान का आश्रय लें ।

हम देखते हैं कि प्रकृति में भी सब वृक्ष एक साथ नहीं फलते-फूलते । किसी मौसम में कोई वृक्ष फलता-फूलता है तो दूसरे मौसम में दूसरा । यही सृष्टि के क्रम का सौंदर्य है । सभी वृक्ष और पौधे एक ही मौसम में फले-फूलें तो आनंद नहीं आयेगा । प्रकृति के इस वैचित्र्य में ही उसका सौंदर्य है, शोभा है ।

अड़ोस-पड़ोस में किसीको फला-फूला, उन्नत देखकर हमें प्रसन्न होना चाहिए । 'फलने-फूलने का अभी उसका मौसम है तो बाद में कभी-न-कभी हमारा भी आयेगा ।'- ऐसा विचारकर अपनेको आनंदित और उत्साहित करना चाहिए ।

दूसरे की उन्नति एवं शक्ति देखकर अपनी उन्नति के लिए और शक्ति बढ़ाने के लिए प्रयत्न तो अवश्य करना चाहिए परंतु ईर्ष्या की आग पैदा करके अपनी उन्नति और शक्ति के मूल को दग्ध नहीं करना चाहिए । वृक्ष की नींव में ही अगर आग लगा दी जाय तो वह फलेगा-फूलेगा नहीं । ऐसे ही दूसरे की उन्नति या उत्कर्ष देखकर अगर अपना हृदय जला दें तो फिर अपने जीवन में फलने-फूलने की, उन्नति करने की संभावना कम हो जाती है क्योंकि ईर्ष्या ऐसी आग है जो अपनी योग्यता नष्ट कर देती है। इसलिए परोत्कर्ष-सहिष्णुता का सद्‌गुण हमारे जीवन में होना चाहिए ।

चौथा सद्‌गुण है 'परमत सहिष्णुता' । यह जरूरी नहीं है कि आपके मत के अनुसार ही सब लोग चलें । आप 'जय-जय सियाराम' अथवा 'अल्ला हो अकबर' बोलते हैं तो सारी दुनिया के लोग ऐसा ही करें यह जरूरी नहीं है, संभव ही नहीं है । सृष्टि की यह सुंदरता है, माधुर्य है कि इसमें वैचित्र्य है ।

करोड़ों-करोड़ों मनुष्य धरती पर हैं लेकिन एक चेहरा दूसरे चेहरे से किसी-न-किसी बात में भिन्न होता ही है । चाहे किन्हींमें खान-पान में, नाम में समानता हो फिर भी कुछ-न-कुछ विचित्रता, बदलाहट होगी ही । यह अनादि काल से चल रहा है, इसलिए हठ नहीं करना चाहिए कि 'सब हमारे मत के, सब हमारे धर्म के, हमारे पंथ के हों ।' अपने मत से विरुद्ध मतवाले भी होंगे, अपने विचारों से विरुद्ध विचारवाले भी होंगे । जो अपने मत के विरुद्धवाले को देखना भी कबूल नहीं करता, जो अपने मत के विरुद्धवाले से मिलना या बोलना कबूल नहीं करता ऐसा संकीर्ण मन का आदमी बड़ा दुःखी रहता है । अथवा 'सब हमारी हाँ-में-हाँ करें ।'- ऐसा जो व्यक्ति सोचता है वह

भी सदा दुःखी रहता है। संसार है तो कभी पत्नी की चलेगी तो कभी पति की चलेगी; कभी बेटी की बात चल जायेगी तो कभी बेटे की चलेगी; कभी पड़ोसी की बात चल जायेगी तो कभी शत्रु की बात भी वह परमात्मा चला देगा।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना।

मति की विचित्रता है तो मत की विचित्रता स्वाभाविक है। इसलिए आप अपने हृदय में ऐसी योग्यता लाओ कि सब परिस्थितियों को, सब मतों को सहजता से सहन कर सकें।

ये चार सद्गुण जीवन में आने से हृदय ऐसा पवित्र हो जाता है कि चाहे दुनिया की कितनी भी विचित्रता आ जाय लेकिन संत कबीरजी की नाईं उठते, बैठते, खाते, पीते, व्यवहार करते भी शांति, आत्ममधुरता भंग नहीं होगी।

उठत बैठत वही उटाने।
कहत कबीर हम उसी ठिकाने॥

योगी गोरखनाथजी कहते हैं :

खाये पीये न करे मन भंगा।
कहे नाथ मैं तिसके संगा॥

आप भी खायें, पीयें, रहें, जीयें लेकिन शांति, आनंद, मधुरता, समता को भंग न होने दें। इनके होने का मुख्य कारण है इन चार सद्गुणों का जीवन में न होना। इसलिए आप इन चारों को जीवन में लाने का अभ्यास करें।

जिसके जीवन में ये चार बातें आ जाती हैं वह आदमी शत्रुओं के बीच भी सुखी रहता है और मित्रों के बीच भी, नरक में भी सुखी रहता है और स्वर्ग में भी, तेजी में भी सुखी रहता है और मंदी में भी, मसूरी में भी सुखी रहता है और मरुभूमि में भी। जो इन चार बातों से विपरीत है, वह मित्रों में भी परेशानी बना लेता है।

इन चार सद्गुणों के बिना साधु साधु नहीं कहला सकता, मनुष्य मनुष्य भी नहीं कहला सकता। इनके बिना हम द्विपाद पशु की पंक्ति में चले जायेंगे। ये चार सद्गुण जीवन में जितने गहरे होंगे, उतना ही हम मनुष्यत्व में से देवत्व की ओर बढ़ेंगे और देवत्व में से ब्रह्मत्व को पा लेंगे।

जब तक ये सद्गुण जीवन में नहीं आये तब तक आपके जीवन में भय बना रहेगा, विघ्न बने रहेंगे, बाधाएँ बनी रहेंगी, अशांति बनी रहेगी, फरियाद बनी रहेगी, पीड़ाएँ बनी रहेंगी और अंत में मौत भी महापीड़ा के रूप में आयेगी। इसलिए इन सद्गुणों को अपनाकर आप अपने जीवन में समता का ऐसा सुंदर संगीत लाओ कि उस संगीत से आप हँसते-नाचते, गुनगुनाते अपने जीवन की यात्रा जीवनदाता को पानेवाली बना सको।

प्रकृति की परिस्थितियाँ बदल देना आपके बस की बात नहीं, प्रारब्ध को रोक देना आपके बस की बात नहीं लेकिन इनके प्रभाव से अपने दिल को थाम लेना यह आपके हाथ की बात है। जो आपके हाथ की बात है वह आप करो तो जो भगवान के हाथ की बात है वह भगवान करेंगे। इन चार सद्गुणों को अपनाकर प्रकृति की परिवर्तनशील परिस्थितियों में अपने हृदय की रक्षा करना यह आपके हाथ की बात है, यह आप करो तो आपके हृदय में प्रकट होना यह भगवान के हाथ की बात है, यह भगवान करेंगे। ❑

सेवाधारियों व सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें। (२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।

नींद और समाधि में क्या फर्क ?

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

ऐसा कोई सामर्थ्य नहीं कि श्रमरहित विश्राम से उसका उद्‌गम न हो। सारी सिद्धियाँ, सारा सुख श्रमरहित विश्राम से ही प्राप्त होता है।

एक होता है शरीर का श्रम, दूसरा होता है मन का श्रम, तीसरा होता है बुद्धि का श्रम। बैठ गये किंतु संकल्प-विकल्प चल रहे हैं तो मन का श्रम, मति का श्रम चालू है।

नींद नहीं, श्रमरहित विश्राम... इसीको बोलते हैं समाधि। नींद में और समाधि में क्या फर्क होता है ? निद्रा के सुख में तमस् रहता है, निद्रा का सुख शरीर की थकान मिटाता है और परमात्म-शांति (समाधि) के सुख में सत्त्व रहता है, अज्ञानता मिटाने का ओज बढ़ता है।

नींद से आदमी शरीर की थकान मिटाकर उठता है किंतु जैसा गया था वैसा ही आयेगा। जैसा मन लेकर गया था, बुद्धि लेकर गया था नींद में, नींद के बाद भी मन-बुद्धि वैसे ही रहेंगे किंतु श्रमरहित परमात्म-ध्यान में विश्रान्ति के बाद, समाधि के बाद मन और बुद्धि बदलते हुए दिखेंगे। बड़े ऊँचे-ऊँचे भाव, ख्याल आयेंगे, सूझबूझ बढ़ती जायेगी।

नींद में झोंके खाते हुए कुछ लोगों का सिर आगे झुकता है, कुछ लोगों का पीछे झुकता है। सिर आगे झुकता है तो समझो वृत्ति हृदय में आ गयी है, नींद आ रही है और पीछे झुकता है तो जड़ता आ रही है। समाधि में सिर सीधा रहेगा।

सतयुग में योगियों एवं ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों की बहुलता थी। वे सोते नहीं थे, आठ घंटे ध्यान करते थे तो उनकी साधना भी हो जाती थी और नींद का काम भी पूरा हो जाता था। ऐसे भी चार घंटे अच्छा ध्यान लग जाय और दो घंटे नींद कर लें तो चल जायेगा पर ध्यान लगना चाहिए बढ़िया।

मैंने देखा है, घाटवाले बाबा रात के बारह-एक बजे तक तो ज्ञानचर्चा करते और सुबह तीन बजे उठकर जंगल में चले जाते। वहाँ ध्यान-भजन करते। थोड़ी-सी थकान होती तो एक-दो घंटे झपकी ले लेते। योगी के लिए चार घंटे नींद बहुत हो जाती है। बालक के लिए आठ घंटे और भोगी, संसारी के लिए छः घंटे तक नींद पर्याप्त है।

समाधि दो प्रकार की होती है : सविकल्प और निर्विकल्प। ऐसे अवांतर कई प्रकार के होते हैं : भाव समाधि, विचारानुगत समाधि, आनंदानुगत समाधि।

बैठे हैं और 'ॐ ॐ आनंद ॐ...' करते-करते, प्राणायाम करते-करते, ध्यान करते-करते एकटक भगवान को, आकाश को, गुरु को देखते-देखते आनंद आने लग जाय तो इसको 'आनंदानुगत समाधि' बोलते हैं। फिर 'ॐ ॐ आनंद ॐ...' यह चिंतन भी छूट जाय और केवल शांति... उठने की इच्छा न हो, आलस्य न हो, निद्रा न हो, मन की कल्पनाएँ न हों इसको बोलते हैं 'निर्विकल्प समाधि'।

'मैं भगवान का भगवान मेरे, सब कुछ भगवान ही हैं।'- ऐसा चिंतन अर्थात् **'वासुदेवः सर्वम्'** की समाधि तो सारे झंझटों को मिटा देती है। भला-बुरा सब वासुदेव की लीला है। जैसे स्वप्न में भले लोग दिखे, बुरे लोग दिखे, बुरी वस्तु दिखी, भली वस्तु दिखी- सब सपने के चैतन्य की लीला है, ऐसे ही यह सब जागृत के चैतन्य की लीला है। इससे शांति मिलती है, फरियाद नहीं रहती। व्यवहार में यथायोग्य करना लेकिन अंदर में समझना **वासुदेवः**

सर्वम्... सब कुछ वासुदेव ही हैं। सब तेरा...।

हरि की लीला बड़ी अपार।

बन गये आप अकेले सब कुछ,
नाम धरा संसार ॥
मात पिता गुरु स्वामी बनकर,
करें डाँट फटकार।
सुत दारा अरु सेवक बनकर,
खूब करें सतकार ॥
कभी रोग का रूप बनाकर,
बनते आप बुखार।
कभी वैद्य बन दवा खिलाते,
आप करें उपचार ॥
कभी भोग सुख मान बड़ाई,
हाजिर में नर-नार।
कभी दुःखों का पहाड़ पटकते,
मचती हाहाकार ॥
कभी संत बनकर जीवों पर,
कृपा दृष्टि विस्तार।
अनगिनत जनमों का दुःख संकट,
छन महँ देवें टार ॥
कभी धरनी पर संतन के हित,
धर मानुष अवतार।
अजब अनोखी लीला करते,
सुमिरत हो भवपार ॥
अगनित स्वाँग रचाते हरदम,
धन्य बड़े सरकार।
ऐसे परम कृपालु प्रभु को,
बिनवऊँ बारंबार ॥

बच्चों में भी तू, बड़े-बुजुर्गों के रूप में भी तू-ही-तू। मेरे वासुदेव ! मेरे गोविन्द ! मेरे गोपाल ! हरि ! अच्युत ! आनंद ॐ... वासुदेव ॐ... सर्वत्र ॐ...

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय, प्रीतिदेवाय, शांतिदेवाय, सर्वदेवाय, आनंद... आनंद... शांति... शांति... विश्रांति... ❐

नींद किस-किसको नहीं आती ?

'महाभारत' में उद्योग पर्व के अन्तर्गत प्रजागर पर्व में आता है कि धृतराष्ट्र को रात्रि में नींद नहीं आती थी। विदुर उन्हें समझाते हैं कि नींद किस-किसको नहीं आती है :

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।
हृतस्वं कामिनं चोरमाविशन्ति प्रजागराः ॥

'राजन् ! जिसका बलवान के साथ विरोध हो गया है, जो दुर्बल है, जो साधनहीन है, जिसका सब कुछ हर लिया गया है, जो कामी है अथवा जो चोर है उसको रात में नींद नहीं आती।'

(उद्योग पर्व : ३३.१३)

नींद इन लोगों को भी नहीं आती :

१. जिसके मन में मरे हुए लोगों की याद ज्यादा आती है।

२. जिसको बहुत कार्य करना होता है।

३. जिसके मन में क्रोध का वेग होता है।

४. जिसके मन में उद्वेग अधिक होता है।

५. जिसके मन में राग अधिक होता है।

६. जिसके मन में द्वेष अधिक होता है।

मनुष्य के सिर पर कर्म, चिंता, तनाव आदि का कितना बड़ा बोझ है कि रात को उसे नींद नहीं आती ! नींद की गोलियाँ खा-खाकर लोग सोते हैं। विदेशों में यह समस्या भयानक रूप ले चुकी है। भारत में अभी इतनी नहीं है और थोड़ी मात्रा में है तो उन्हीं लोगों को है जो विदेशी सभ्यता के गुलाम बनकर फास्टफूड आदि खान-पान एवं भौतिक जगत की सुख-सुविधा को अत्यधिक महत्त्व दे के आध्यात्मिक उन्नति को गौण मान रहे हैं। ❐

जैसे नींद को महत्त्व देते हो वैसे ही चौबीस घंटों में से कुछ समय ध्यान व आत्मचिन्तन में भी बिताओ। तभी जीवन सार्थक होगा। अन्यथा, कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

साधन की दिशा हो लक्ष्य की ओर

मनुष्य अपने कर्म के प्रयोजन का कुछ भी नाम क्यों न रख ले परंतु उसका दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति यही एक प्रयोजन होता है।

कई सोचते हैं, 'हमें इतना सोना-चाँदी, हीरा-मोती मिल जायेगा, तब हमारा दुःख मिट जायेगा और सुख मिलेगा' परंतु अक्ल लगा के देखोगे तो मालूम पड़ेगा कि जिनके पास इतना सब कुछ है उनका भी दुःख नहीं मिटा। समाज में कहे जानेवाले बड़े-बड़े धनपति, उद्योगपति, सेठ, साहूकार भी कहते हैं कि 'हम सुखी नहीं हैं।' तुम इतना पा लोगे तो सुखी हो जाओगे- यह कल्पना बिल्कुल झूठी है, नासमझी में से आयी है।

'पास हो जायें तो सुखी हो जायेंगे।' पास हो गये तो क्या हुआ ? 'नौकरी मिले तो सुखी हो जायेंगे।' जिनको नौकरी मिल गयी वे सुखी हो गये क्या ? 'शादी हो जाय तो सुखी हो जायेंगे।' जिनकी शादी हो गयी वे सुखी हो गये क्या ?

'छोकरा हो जाय तो सुखी हो जायेंगे।... छोकरे की शादी हो जाय तो सुखी हो जायेंगे।... अब छोकरा जुदा हो जाय तो सुखी हो जायेंगे।...' अरे, अपने आत्मा को जान ले तो सुखी, नहीं तो दुःखी-ही-दुःखी !

कई कहते हैं कि 'इतने भोग हमें मिल जायेंगे तो हम सुखी हो जायेंगे।' हम जानते हैं कि लोग भोग कर-करके यक्ष्मा (टी.बी.), दमा, रक्तचाप, अनिद्रा के मरीज होकर मर गये परंतु सुखी नहीं हुए। भोग-भोग के तो लोग दुःखी हुए, बीमार हुए, मर गये; सुखी नहीं हुए।

किसीने कहा : 'हमारे इतने काम-धंधे हैं, ये जब पूरे हो जायेंगे तो हम सुखी हो जायेंगे' परंतु ये काम-धंधे कभी किसीके पूरे नहीं हुए। एक में से एक काम-धंधे निकलते रहते हैं।

जैसे बच्चे में से बच्चे निकलते रहते हैं, पेड़ में से पेड़ निकलते रहते हैं, ऐसे ही काम में से काम निकलते रहते हैं और जिन्दगी पूरी हो जाती है।

'ऋग्वेद' का मंत्र है :

बलं दधान आत्मनि।

'अपने में बल का आधान करो।'

(९.११३.१)

विकारों में गिरने से बचने का बल, सच्चे सुख में लगने का बल प्राप्त करो।

किसीने कहा : 'हम तो प्रेम ही करेंगे तब सुखी हो जायेंगे।' किसीने कहा : 'हम तो शांति से बैठे रहेंगे तो सुखी रहेंगे।' फिर तो पत्थर ही सबसे अधिक सुखी होगा ! शांति से बैठे रहना है तो फिर शिला बनो !

कोई आधार मनुष्य को ऐसा चाहिए जो उसकी समाधि में और विक्षेप में, धनीपने में और दरिद्रता में, कर्म में और भोग में, प्रेम में और शांति में, जागने में और सोने में उसको एक सरीखा (एकरस) आनंदस्वरूप बना दे। जागने में, सोने में, समाधि में, प्रवृत्ति में एकरस अपने आत्मा का स्वाद आता रहे। पूर्ण प्रभु का प्रसाद जगमग-जगमग जगमगाता रहे। तभी आपके प्रयोजन दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति और सुख की प्राप्ति की पूर्ति होगी। यदि आप किसी एकांगी वस्तु में अपने प्रयोजन की पूर्ति की कल्पना करते हैं कि 'ऐसा हो तो मैं सुखी होऊँगा, ऐसा बनूँ तभी मैं सुखी होऊँगा, ऐसा न हो तभी मैं सुखी होऊँगा।' तो

सर्व साधनों का राजा

सब ईश्वररूप है फिर भेद, भ्रम, अमंगल व दुःख कहाँ है ? ज्ञानविस्मृत दृष्टि में । क्योंकि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि । सृष्टि तो वही-की-वही है, आत्मा वही-का-वही है, पंचभूत वही-के-वही हैं, भेद है ज्ञानी महापुरुष और अज्ञानी जीव की दृष्टि का । इसीलिए संतों ने परमात्म-स्मृति को सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। सच्चिदानंद रसस्वरूप चैतन्य हर क्षण, हर स्थान पर, हर जीव के लिए उतना-का-उतना ओत-प्रोत है परंतु उसका आनंद और माधुर्य वे ही लूट पाते हैं जो सतत सतर्क रहकर सर्व साधनों के राजा 'स्मृति-साधन' का हाथ थामे रहते हैं । भगवन्नाम-जप भी तब श्रेष्ठता की पराकाष्ठा पर पहुँचता है जब भगवत्स्मृतिसहित किया जाय। मोक्ष-प्रधान सभी शास्त्रों ने इस सुंदर साधन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है :

कृते यद् वत्सरात्साध्यं पुण्यं माधवतोषणम् ।
त्रेतायां मासतः साध्यं द्वापरे पक्षतो नृप ॥
तस्माद्दशगुणं पुण्यं कलौ विष्णुस्मृतेर्भवेत् ।

'सत्ययुग में भगवान विष्णु को संतुष्ट करनेवाला जो पुण्य एक वर्ष में साध्य है, वही त्रेता में एक मास में और द्वापर में पंद्रह दिनों में साध्य होता है परंतु कलियुग में भगवान विष्णु का स्मरण कर लेने से ही उससे दस गुना पुण्य होता है ।' (स्कंद पुराण, वै.वै.मा. : २२.२०-२१)

स्मरन्तः स्मारयन्तश्च मिथोऽघौघहरं हरिम् ।

'भगवान श्रीहरि राशि-राशि पापों को एक क्षण में भस्म कर देते हैं । सब उन्हींका स्मरण करें और एक-दूसरे को स्मरण करायें ।'

(श्रीमद्भागवत : ११.३.३१)

देवर्षि नारदजी तो भगवान के विस्मरण में परम व्याकुल होने को हीं दृढ़ भक्ति का लक्षण मानते हैं : **तद्विस्मरणे परमव्याकुलता ।**

(नारद भक्ति दर्शन : १९)

गुरु अर्जुनदेवजी भगवत्सुख पाने के लिए इस साधन के अवलम्बन पर इतना जोर देते हैं कि 'सुखमनी साहिब' में वे कहते हैं :

सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु ।

'स्मरण करो, स्मरण करो, स्मरण करो और सुख पाओ ।'

पहले होंठों में नामस्मरण करो, फिर कंठ में नामस्मरण करो व अंत में हृदय से नामस्मरण करो । यह आत्मिक सुख को प्रकटाने का बहुत ही सरल तरीका है ।

'श्री नारायण स्तुति' व 'भगवन्नाम जप-महिमा' इन भगवन्नाम स्मरण-साधन से संबंधित पुस्तकों को बार-बार पढ़ें । भगवत्स्मृति की महत्ता जाननेवाले स्वामी रामसुखदासजी सत्संग में बार-बार यह प्रार्थना करवाते थे : 'हे नाथ ! हे मेरे नाथ ! मैं आपको भूलूँ नहीं ।'

यह साधन अत्यधिक सुलभ तब बन जाता है जब इसका लाभ लेने के विभिन्न तरीके ज्ञात हो जाते हैं । सूक्ष्मता से देखें, आप दैनंदिन व्यवहार में किसी-न-किसीकी निन्दा तो अवश्य ही कर लेते होंगे । किसी-न-किसीकी प्रशंसा भी कर लेते होंगे । कभी-न-कभी थोड़ा-बहुत गुस्सा भी कर लेते होंगे । किसी-न-किसीको उलाहना देते होंगे । किसी-न-किसीका कुछ कार्य करते होंगे । किसी-न-किसीसे प्रेम करते होंगे, द्वेष करते होंगे और थक जाने पर नींद या विश्राम की शरण तो अवश्य ही

जाते होंगे। यह साधन आपसे निन्दा, स्तुति, प्रेम, क्रोध, द्वेष, आराम, खान-पान, क्रिया-कलाप कुछ भी नहीं छुड़ाता, सिर्फ आपको एक ही, बहुत-बहुत सरल बात करने को कहता है और आप सभी उसे करने में बिल्कुल स्वतंत्र हैं।

कभी क्रोध, निन्दा या द्वेष का भाव मन में उठे तो उसे भी भगवान की ओर ही मोड़िये। कहिये : 'प्रभु ! तुम क्या कर रहे हो, इतनी महँगाई बढ़ रही है, आम जनता पिसी जा रही है, तुम्हें दया नहीं आती ? इतनी हिंसा, गरीबी, विषमता बढ़ रही है, क्या तुम तटस्थ-साक्षी बनकर देखते बैठे रहोगे ? क्या तुम्हारे हृदय की दयालुता, करुणा सूख गयी है ?'

एक बार उड़िया बाबाजी कीर्तन करनेवालों पर बहुत झुँझलाये : ''क्या 'ईश्वर-ईश्वर' लगा रखा है तुम लोगों ने ! कहाँ है तुम्हारा ईश्वर ? बजाते-बजाते झाँझ फोड़ डाली, मृदंग बजा-बजाकर, नाच-नाचकर ईश्वर-ईश्वर करते हुए कान फोड़ दिये। दिन-रात चिल्लाना !...''

उस समय कोकिल साँईं आश्रम में आये थे। उन्होंने पूछा : ''आज आपकी ईश्वर के साथ लड़ाई हुई है क्या ?''

तब बाबा ने बताया कि वे अस्पताल देखने गये थे। पंक्तिबद्ध रोगियों को खाटों पर पड़े, कराहते देखकर मन में ऐसी करुणा उमड़ी कि ईश्वर पर क्रोध आ गया।- इस प्रकार क्रोधादि को ईश्वर से ही जोड़ दो।

अब क्या ब्रह्मनिष्ठ संत उड़िया बाबाजी नहीं जानते होंगे कि अस्पताल के रोगी अपने-अपने पूर्वकर्मों का फल भोग रहे हैं ? परंतु जीवन्मुक्त संतों की ऐसी लीलाएँ भक्तों को शास्त्रों का मर्म समझा देती हैं :

कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम्।

'काम, क्रोध, अभिमानादि भी भगवान से ही करना चाहिए।' (नारद भक्ति दर्शन : ६५)

उड़िया बाबाजी कहते हैं : 'भगवान तो किसीका दुःख दूर नहीं करते। यदि वे दुःख दूर करते तो संसार में कोई दुःखी नहीं होना चाहिए था। दुःख तो उसीका दूर होता है जो दुःखी होने पर उनका स्मरण करता है। अतः भगवत्स्मृति ही दुःख दूर करनेवाली है।'

कभी किसीको उलाहना देने का भाव आये तो सोचिये कि यह व्यक्ति तो भगवद् चेतना के हाथों की कठपुतली है, सूत्रधार तो वे चैतन्यस्वरूप परमात्मा ही हैं। अतः उलाहना भी हम उन्हींको देंगे। जब संत तुलसीदासजी जैसे संत भी

मम हृदय भवन प्रभु तोरा।
तहँ बसे आइ बहु चोरा॥
अति कठिन करहिं बरजोरा[1]।
मानहिं नहिं बिनय निहोरा[2]॥
कह तुलसिदास सुनु रामा।
लूटहिं तसकर तव धामा॥
चिंता यह मोहिं अपारा।
अपजस[3] नहिं होइ तुम्हारा॥

कहकर भगवान को उलाहना देने में दोष नहीं मानते तो हम क्यों मानें ? उलाहना माँ को, भगवान को दिया जाता है तब वह उनके विशेष प्रेम, विशेष दया-कृपा का दोहन करता है और हम माधुर्यमय, रसमय हो जाते हैं।

विपत्ति के समय मन में भय उत्पन्न हो जाय तो भगवान को ही पुकारो, जैसे गजेन्द्र ने ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर भगवान को आर्तभाव से पुकारा था। भगवान को पुकारना हो, उनकी स्तुति करनी हो तो इस 'स्तुति विद्या' को सीखने के लिए 'श्रीमद्भागवत महापुराण', 'श्री नारायण स्तुति' पुस्तक पढ़ें।

प्रेम का भाव आया तो उसे भी आप भगवान की ओर मोड़िये क्योंकि प्रेम के सच्चे अधिकारी तो वे ही हैं। (शेष पृष्ठ १९ पर)

१. जबरदस्ती २. निवेदन ३. अपयश

स्मृति-योग, दान-योग और विवेक

कलियुग में दुर्गुण बहुत हैं लेकिन एक बड़ा भारी सद्गुण है। कलियुग में काम, क्रोध, लोभ, मोह, बीमारी, कपट, अशांति, इंसान-इंसान लड़ मरें, भाई-भाई, पति-पत्नी में अशांति... कलियुग में कीचड़-युग हो गया लेकिन एक बड़ा भारी सद्गुण है। वह सद्गुण है स्मृति-योग। स्मृति-योग मतलब भगवान की स्मृति करे, नाम का योग करे।

छोटे-से-छोटा साधन हो लेकिन उद्देश्य है भगवान को पाना। भगवान ही हमारे हैं, ऐसा उद्देश्य बनाये, लक्ष्य बनाये तो कलियुग के दोष शांत हो जाते हैं। फिर धन आयेगा तो बुरे रास्ते नहीं जायेगा अच्छे रास्ते जायेगा। जिसका धन अच्छे रास्ते नहीं जायेगा, उसका धन बुरे रास्ते जरूर जायेगा। शराब में, कबाब में, जुए में नहीं जायेगा तो फिर छोरे उड़ायेंगे अथवा इन्कमटैक्सवाला ले जायेगा।

कलियुग में तीन चीजों का बड़ा भारी महत्त्व है। एक तो स्मृति-योग का महत्त्व है। भगवान के नामजप के साथ-साथ भगवान की स्मृति करे और दूसरा है दान-योग। **दानं केवलं कलियुगे।** जिसके पास धन है धन का दान करे। सेवा करने की ताकत है तो सेवा करे, ज्ञान देने की ताकत है तो ज्ञान दे लेकिन ज्ञान ऐसा नहीं कि भाषण करे। पहले अपने गुरु की आज्ञा में रहकर गुरु का ज्ञान पचा ले। शांति का दान, ज्ञान का दान, भक्ति का दान, प्रीति का दान देना- ये सद्गुण हैं। सद्गुण बढ़ जायेगा तो दुर्गुण छू हो जायेगा। हृदय पवित्र हो जायेगा। कलियुग में इसका बड़ा भारी चमत्कार है।

तुम्हारा मन शांत हो रहा है। तुम धर्म के रास्ते चल रहे हो। तुमको पैसा अपने लिए नहीं उड़ाना है, धर्म के लिए लगाते हो तो तुम्हारा पैसा तुम्हारे को तारनेवाला हो जायेगा और अपने खान-पान में, ऐश-आराम में लगेगा तो तुम्हारा पैसा डुबानेवाला हो जायेगा।

भगवान के नाम की स्मृति, सत्कर्म में रुचि- ये दोनों कल्याण कर देते हैं।

तीसरी बात है विवेक जगाये। इतना हो गया आखिर फिर क्या ? इतना पैसा हो गया फिर क्या ? इतना धन हो गया फिर क्या ?... आखिर छोड़ के मरना है। मर जायें उसके पहले अमर आत्मा को जान लें। जो मरने के बाद भी नहीं मरता, उस शांत आत्मा, चेतन आत्मा को समझ लें।

धन ज्यादा है लेकिन उद्देश्य ऊँचा नहीं तो तेरे धन को आग लगे। वह काहे का धनवान, धन का लोभी है। धन का महत्त्व नहीं है, सत्ता का महत्त्व नहीं है, सौंदर्य का महत्त्व नहीं है, महत्त्व है उद्देश्य का, ईश्वरप्राप्ति का। उद्देश्य है सदा सुख पाने का। ईश्वरप्राप्ति किसको बोलते हैं ? बोले : सदा सुख का नाम है ईश्वरप्राप्ति, सदा सुखी रहने का नाम है ईश्वरप्राप्ति। दुःखों से सदा के लिए छूट जायें उसका नाम है ईश्वरप्राप्ति। मनुष्य की माँग का नाम है ईश्वरप्राप्ति। मनुष्य चाहे लक्ष्य कोई भी बनाये उसका उद्देश्य होता है- दुःखों की निवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति। शादी करना, M.B.A. करना, चाहे कोई भी लक्ष्य हो, उद्देश्य है दुःखों की निवृत्ति और परम सुख की प्राप्ति लेकिन बाहर से दुःखों की निवृत्ति,

सुखों की प्राप्ति टिकती नहीं है। असली सुख जहाँ है वहाँ पहुँच जाओ तो दुःख टिकता नहीं। उद्देश्य शुद्ध नहीं होता तो शुद्ध सुख नहीं मिलता। उद्देश्य शुद्ध तब होगा जब शुद्ध सत्संग मिलेगा। सच्चे महापुरुष की शरण में, आज्ञा में रहे तभी उद्देश्य शुद्ध होता है। अनुरूप साधन मिलते हैं। अपना उद्देश्य ऊँचा कर लो कि मुझे अंतरात्मा का सुख चाहिए। शादी-विवाह का सुख तो देख लिया, कोई सार नहीं। अधर्म करके देख लिया, उससे तो पतन होता है। धर्म का सुख चाहिए।

ॐ... ॐ... ॐ... उच्चारण करते जाओ। शांत होते जाओ। अंतःप्रेरणा मिलेगी, भाग्य की रेखाएँ बदलेंगी। यह तो सब कर सकते हैं। कोई कठिन है क्या ? जितनी देर जप करें उतनी देर शांत, चुप बैठें। भगवान को, गुरु को एकटक देखें। मन में कुछ विचार आते हैं तो चिंता न करें। विचार आये और गये, मैं तो भगवान का हूँ। आकाश को देखो। देखकर शांत होओ। यह बहुत ऊँची साधना है। संसार की व्यर्थ की बातों में कोई सार नहीं।

आवत बाता जावत बाता, उठत बाता बैठत बाता।
इन बातों में सार नहीं, जम मारेगा लाता ॥

❐

(पृष्ठ१७ का शेष) वे सबका भरण-पोषण करते हैं, सबको अपनी चेतना प्रदान करते हैं।

इस प्रकार येन-केन प्रकारेण भगवत्स्मृति करनी चाहिए ताकि एक दिन **'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा...'** ये अर्जुन के वचन हमारी अपनी अनुभूति हो जायें, हमारी शाश्वत स्मृति जग जाय और परमात्म-विस्मृति को सदा-सदा के लिए अलविदा कह दें।

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साई माहिं समाय ॥

❐

'स्व' का आनंद

- पूज्य बापूजी

जब मैं बच्चा था तब मैंने कहीं पढ़ा था कि एक बार अपनी चरणचंपी कर रही लक्ष्मीजी से भगवान विष्णु बोलते हैं : 'लक्ष्मी ! तुम समझती होगी कि मैं चरणचंपी कर रही हूँ और विष्णु बड़े आनंद से सो रहे हैं, बड़ा आनंद ले रहे हैं लेकिन तुम जो चरणचंपी कर रही हो उससे मैं आनंदित हो रहा हूँ, ऐसा नहीं है। मैं 'गीता' के ज्ञान से तृप्त हो रहा हूँ। मैं अपनी तृप्ति में तृप्त हूँ। तुम्हारे द्वारा चरणचंपी करवाने से मैं तृप्त नहीं हो रहा हूँ परंतु चरणचंपी करवा के तुम्हें सेवा का मौका दे रहा हूँ।'

ब्रह्मवेत्ता को कोई चीज, कोई वस्तु, कोई व्यक्ति मिले तभी आनंद आता है, ऐसा नहीं है। वे स्वयं आनंदस्वरूप हैं। उन्हें आनंद आता हुआ दिखे तो कभी नहीं समझना कि किसी व्यक्ति के कारण आनंद आया, किसी वस्तु के कारण आया। किसी व्यक्ति-वस्तु से अगर आनंद मानता है तो वह ब्रह्मवेत्ता नहीं है। ब्रह्मवेत्ता अपने-आपमें तृप्त होता है।

सामान्य बच्चा बढ़िया कपड़े पहनता है तो शोभायमान होता है और भगवान श्रीकृष्ण जो चीज पहनते हैं वह चीज शोभनीय हो जाती है। सामान्य आदमी वस्त्र-अलंकार से शोभायमान होता है किंतु ब्रह्मवेत्ता जो भी करता है वह शोभायमान ! जड़भरतजी महाराज कहारों के साथ पालकी ढोने में लगा दिये गये तब भी शोभनीय, अष्टावक्रजी महाराज टेढ़ा-मेढ़ा चल रहे हैं तब भी शोभनीय, भगवान श्रीरामजी 'हाय सीते ! हाय सीते ! सीतेऽऽऽ, सीतेऽऽऽ... हाय लक्ष्मण ! लक्ष्मण !...' कर रहे हैं तब भी शोभा दे रहे हैं।

कैसा है आनंदस्वरूप चैतन्य का प्रभाव ! भगवान विष्णु, भगवान श्रीराम एवं महापुरुषों का जो आनंदस्वरूप है, वही तुम्हारा भी है। बस, जगने भर की देर है।

❐

जीवन रसमय होना चाहिए

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

एक होता है क्रियाजन्य रस, विकारी रस - खाने, पीने, ओढ़ने से मिलनेवाला रस। खाओ-पीयो लेकिन मजा लेने के लिए खाया, थोड़ा ज्यादा खाया तो सजा हो जायेगी। संतान को जन्म देने के लिए संभोग किया तो ठीक है परंतु मजा लेने के लिए किया तो फिर जल्दी बूढ़े हो जाओगे। तुमने विकारी सुख लिया, रस लिया तो कितनी देर ? फिर रोओगे। पति-पत्नी से मिले 'ही-ही' किया फिर थकोगे, लड़ोगे, रोओगे। शराब-कबाब का रस लिया तो फिर रोओगे। ऐसे ही वाहवाही का रस लिया फिर निंदा होगी तो रोओगे।

देखने का, सूँघने का, चखने का, स्पर्श करने का और सुनने का रस - ये पाँच प्रकार के क्रियाजन्य अथवा विकारी रस हैं । अगर संसारी चीजों से रस लेने की आदत पड़ गयी तो जल्दी ही अस्त हो जाओगे । संयम रखकर भगवद्भाव का, जप का, ध्यान का रस लेना इससे अच्छा है लेकिन सदा जप नहीं होगा, सदा ध्यान नहीं होगा, सदा के लिए भावना नहीं होगी, बदलती रहेगी । वे लोग बड़ी गलती करते हैं कि 'मेरे को पहले ध्यान के समय ऐसा होता था, बापूजी पहले स्वप्न में आते थे । बापूजी ! पहले जैसा अब नहीं दिखता, मैं तो मर गयी ।' यह भावना का रस है। भावना सदा एक जैसी नहीं रहेगी । चाहे बाहर का सुख हो चाहे भावना का सुख हो, एक जैसा नहीं रहेगा। वे लोग दुःख बना देते हैं जो इसे एक जैसा रखना चाहते हैं । 'मैं तो दिखती रहूँ ऐसी ।' अरे, रूप सदा नहीं रहेगा प्रकृति के राज्य में।

भावना से ऊँचा विचारजन्य रस होता है। उसमें मेहनत कम होती है। बात या सिद्धान्त समझ में आये, फिर उसके अनुरूप अपने मन को घुमाकर विचारजन्य रस लिया जाता है।

उससे ऊँचा होता है ज्ञान संयुक्त, ज्ञानजन्य रस। उस रस का उद्गम-स्थान जहाँ है उसको 'मैं' रूप से जान लिया तो

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान।
आसुमल से हो गये, साँईं आसाराम ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति चेते,
ब्रह्मानन्द का आनन्द लेते।

देखो, जाग्रत अवस्था आयी, चली गयी। जाग्रत के कितने व्यवहार आये, चले गये लेकिन 'मैं'- उस जाग्रत के व्यवहार को देखनेवाला तो नहीं गया । स्वप्न आया और स्वप्न में कई रेलगाड़ियाँ, मनुष्य, अच्छा-बुरा दिखा। वह आया-गया, उसको जाननेवाला 'मैं' नहीं गया। गहरी नींद कई बार आयी और चली गयी लेकिन उसको जाननेवाला मैं हूँ। रात को लगभग ग्यारह बजे चट-से नींद आ गयी और सुबह पौने चार के आस-पास नींद खुल गयी। अब नींद आयी थी और गयी उसको जाननेवाला तो रहा न !

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति चेते - देख रहे हैं।

ब्रह्मानन्द का आनन्द लेते - ये आते-जाते हैं लेकिन मैं सदा रहता हूँ चैतन्य, ब्रह्मस्वरूप।

खाते पीते मौन या कहते,
ब्रह्मानन्द मस्ती में रहते ॥

तीर्थों से, मंदिरों से, मसजिदों से वह काम नहीं होता है जो सत्संग से होता है।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी संगत साध की हरै कोटि अपराध ॥

चुप बैठने से मन को, बुद्धि को विश्राम मिलता है। विश्राम कहाँ से आता है ? दिन भर करते-करते थक जाते हैं, रात को कुछ नहीं करते हैं तो दूसरे दिन करने की शक्ति उसी आत्मा से आती है लेकिन नींद के कारण पता नहीं चलता है। फिर भी दूसरे दिन काम करने के काबिल हो जाते हैं। 'हरि ॐ' का उच्चारण कर चुप हो जाते हैं तो ध्यान में विश्राम हमारे दोषों को मिटाने की शक्ति देता है और प्रभुरस देता है।

वेद कहता है हँसते-नाचते जिंदगी बिताओ। हँसना-नाचना कुकर्म करते हुए नहीं, भगवान की भक्ति और परोपकार करते हुए। भगवान शिवजी डमरू लेकर नाचते हैं, भगवान श्रीकृष्ण बंसी बजाते हुए, देवर्षि नारदजी वीणा बजाते हुए, गौरांग ताली बजाते हुए, तुकारामजी महाराज मँजीरे बजाते हुए... जीवन भगवदीय रसमय होना चाहिए।

शराब-कबाब आदि का विकारी रस तबाह करता है, जीवात्मा को गिरानेवाला होता है जबकि भक्तिभाव का रस ऊँचा ले आता है। ज्ञानरस ऊँचाइयों में टिकने की कला देता है। प्रेमरस सारे रसों से शुद्ध रस क्या है, वह बताता है। उससे ऊपर है साक्षात्कार का रस। भगवद्‌रस जीवात्मा को उन्नत करता है। भगवान का ज्ञानरस जीवात्मा को भगवान से मिला देता है। ❐

गणेश चतुर्थी या कलंकी चौथ

गणेश चतुर्थी को 'कलंकी चौथ' भी कहते हैं। इस चतुर्थी का चाँद देखना वर्जित है।

इस वर्ष गणेश चतुर्थी (१५ सितम्बर) के दिन चन्द्रास्त रात्रि ८-४५ बजे है। इस समय तक चन्द्रदर्शन निषिद्ध है।

यदि भूल से भी चौथ का चंद्रमा दिख जाय तो 'श्रीमद्‌भागवत' के १०वें स्कंध, ५६-५७वें अध्याय में दी गयी 'स्यमंतक मणि की चोरी' की कथा का आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिए। भाद्रपद शुक्ल तृतीया या पंचमी के चंद्रमा के दर्शन करना चाहिए, इससे चौथ को दर्शन हो गये हों तो उसका ज्यादा खतरा नहीं होगा।

अनिच्छा से चन्द्रदर्शन हो जाय तो...

निम्न मंत्र से पवित्र किया हुआ जल पीना चाहिए। मंत्र का २१, ५४ या १०८ बार जप करें। मंत्र इस प्रकार है :

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥

'सुंदर सलोने कुमार ! इस मणि के लिए सिंह ने प्रसेन को मारा है और जाम्बवान ने उस सिंह का संहार किया है, अतः तुम रोओ मत। अब इस स्यमंतक मणि पर तुम्हारा ही अधिकार है।' **(ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय : ७८)** ❐

...तभी सुख-शांति के गीत गूँजेंगे

वीणा के तार उसकी खूँटियों से बँधे रहते हैं तभी उसमें से मधुर स्वर निकलते हैं। वृक्ष की जड़ें जमीन से बँधी हैं तभी वृक्ष पर सुंदर-सुंदर फूल व तृप्तिदायक फल लगते हैं। नदी दो किनारों से बँधी है तभी सुदूर क्षेत्रों को हरा-भरा करके समृद्ध करती जाती है और अंत में सागर से मिल पाती है। ऐसे ही हे साधक ! यदि तुम गुरुवचनरूपी सूत्र से बँधे रहोगे, मनमुख नहीं बनोगे तभी तुम्हारे जीवन में सुख-शांति के गीत गूँजेंगे और परमात्मा से मिल पाओगे।

(पूज्य बापूजी द्वारा दिये गये एक पत्रोत्तर से संकलित)

भगवद्-चिंतन छलकाये भगवद्-ज्ञान और माधुर्य

(पूज्य बापूजी के सत्संग से)

'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं :

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ।।

'निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणों को अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरन्तर रमण करते हैं ।' (१०.९)

ऐसे जो भगवान के प्यारे भक्त हैं वे संसार के स्वामी में निमग्न हैं । वे संसार में भी सुखी रहते हैं और मरने के बाद जहाँ मन लगा होता है उस परब्रह्म परमात्मा में मिलकर मुक्तात्मा हो जाते हैं ।

भगवान कहते हैं कि जो मेरे में मन लगाते हैं, मेरे में प्राण लगाते हैं... प्राण प्रकृति के हैं । अर्थात् प्रकृति का शरीर और स्वयं - दोनों मुझमें लगाते हैं ऐसे मेरे जो भक्तजन हैं, वे आपस में मिलते-जुलते हैं तो मेरे गुण, मेरे प्रभाव, मेरी लीला कैसी है, मैं कैसे मिलूँगा ? आदि की चर्चा करते हैं, चिंतन करते हैं, स्मरण करते हैं । भगवद्-चिंतन व भगवद्-चर्चा करने से उनके अंतःकरण में भगवद्-गुण उत्पन्न होते हैं, भगवद्-ज्ञान उत्पन्न होता है, भगवद्-शांति उत्पन्न होती है, भगवद्-आनंद उभरता है और कुछ समय पा के भगवत्तत्व का साक्षात्कार होकर जीवात्मा परब्रह्म परमात्मा को पाकर मुक्त हो जाता है ।

मन की विशेषता है कि एक समय में दो बातें मन में नहीं होतीं । जब दुःखाकार वृत्ति होती है तो सुखाकार नहीं होती । सुखाकार होती है तो दुःखाकार नहीं होती । ऐसे ही मन में ईश्वराकार वृत्ति होती है तो ईश्वर का ऐश्वर्य, ईश्वर का ज्ञान, ईश्वर का सुख, ईश्वर का स्वभाव हमारे मन में पनपने लगता है । जब जगत का चिंतन करते हैं तो जगत का 'मैं-मेरे' का, 'तू-तेरे' का जो कुछ तुच्छ ज्ञान है, राग-द्वेष, चिंता, शोक, लालच, मिला हुआ छूट न जाय इसका भय और किसीके पास कुछ ज्यादा है तो उससे ईर्ष्या - ये सब दुर्गुण रहते हैं, जबकि भगवद्-चिंतन से भगवदीय सद्गुण रहते हैं ।

गोप-गोपियाँ भगवान के दीवाने थे । भगवान की चर्चा करते और भावविभोर हो जाते, कभी प्रेम के आँसू बहाते थे । इस तरह भगवद्-चर्चा से उनका मन भगवद्-ज्ञान, भगवद्-शांति, भगवद्-आनंद एवं भगवद्-माधुर्य से सराबोर ही रहता था ।

इसलिए भगवान कहते हैं : **मच्चित्ता मद्गतप्राणा...**

जो भगवान के प्यारे हैं उनका जीना और उनकी चेष्टा दोनों भगवान के लिए होती हैं । जीते हैं तो भगवान के लिए और कुछ करते हैं तो भगवान के लिए । क्रिया भी भगवान के लिए करें और उद्देश्य भी भगवान का हो । जैसे गोपियाँ मक्खन बिलोती हैं तो भी भगवान की प्रसन्नता के लिए । 'दही लो दही... माखन लो माखन...'- माखन और दही बेचने के लिए आवाज तो लगा रही हैं लेकिन माखन में मोहन को मिला रही हैं और फिर 'माधव लो माधव...

गोविंद लो गोविंद...'- ऐसा कर रही हैं। कभी-कभी दूध दुहते-दुहते भी श्रीकृष्ण की याद आ जाती है, दूध के बर्तन में श्रीकृष्ण के दीदार हो जाते हैं । इस प्रकार जो भगवान के प्यारे हैं, भगवान के जो दीवाने हैं, भगवान के जो प्रेमी भक्त हैं वे भगवान के सिवा और कहीं अपना मन लगाते नहीं हैं । वे जहाँ भी गुण देखते हैं, गहराई में भगवान की ही करुणा-कृपा का दीदार करते हैं ।

जैसे जो भी पेड़ हैं तो उनका आधार धरती है, जो भी लहर-तरंग है उसका आधार पानी है। जो भी प्रकाश है उसका आधार सूर्य है। ऐसे ही जो भी गुण और प्रभाव है, उसका आधार परमेश्वर है। भक्त अगर कठिनाइयाँ देखता है तो सोचता है कि भगवान मुझे शुद्ध कर रहे हैं और सुविधाएँ देखता है तो सोचता है भगवान मुझे प्रसाद देकर उत्साहित कर रहे हैं। इस प्रकार भगवान के जो प्रेमी भक्तजन हैं, भगवान के प्यारे, भगवान के दुलारे हैं वे सबमें भगवान की कृपा का हाथ देखते हैं। जो कुछ जगत में अच्छा-बुरा, मंगल-अमंगल दिखता है या उथल-पाथल होती है उसके पीछे भगवान की करुणा-कृपा को देखते हैं।

बोले : महाराज ! अच्छे में तो भगवान की कृपा है लेकिन जो बुरा दिखे उसमें भी भगवान की कृपा को देखें, यह कैसे ?

जैसे आपने दीया जलाया और उस पर पतंगे मँडराने लगे। पतंगों को तो बहुत अच्छा लग रहा है लेकिन आप जानते हैं कि जल मरेंगे, दुःखी होंगे। तो आपने दीया बुझा दिया। कीट-पतंगों को बुरा लगेगा कि कैसा आदमी है ? लेकिन आपने दीया बुझाया तो पतंगों की भलाई के लिए। ऐसे ही जीवरूपी पतंगे 'मेरी पत्नी, मेरा बेटा...' करके इस संसार के मोह में अपनी उम्र तबाह कर रहे हैं तो भगवान उसमें कुछ-न-कुछ गड़बड़ी कर देते हैं। पति-पत्नी में अनबन पैदा कर देंगे या बेटे-बाप में गड़बड़ी कर देंगे या फिर धंधे-रोजगार में कुछ खटपट कर देंगे। जहाँ आसक्त होकर स्थिर हुए, बस, समझो वहाँ गड़बड़ आ धमकी। वास्तव में यह भगवान की कृपा है। जो विघ्न-बाधा या दुःख आते हैं, वह दुःखहारी श्रीहरि की व्यवस्था है कि संसार में मोहरूपी बेहोशी में आपका समय तबाह न हो जाय।

'शरीर बढ़िया है, पत्नी मधुरभाषिणी है, बेटा आज्ञाकारी है, बेटियाँ वेल सेट हैं; मैं बहुत खुश हूँ।'- ऐसे खुश होते-होते दिन कैसे गुजर जायेंगे पता भी नहीं चलेगा। जब मृत्यु का झटका लगेगा तो सब छूट जायेगा। जितना संसार में सुख भोगा होगा, जितनी संसार में आसक्ति होगी, उतनी ही अधिक मरते समय पीड़ा होगी अथवा तो मरने के बाद जीव प्रेत होकर भटकेगा। आत्मिक अनुभव पाने की यात्रा नहीं कर सकेगा लेकिन भगवान के प्यारे तो छूटनेवाली वस्तुओं का सदुपयोग करते हैं और अछूट आत्मा का चिंतन-ध्यान करते हैं।

अगर मनुष्य सुख में सुखी और दुःख में दुःखी नहीं होता है, दोनों को भगवान का भेजा हुआ मानकर सम रहता है तो सुख-दुःख से पार होकर भगवन्मय हो जाता है। सुख और दुःख के चिंतन से आदमी भगवान को भूल जाता है। हर पल भगवान का स्मरण करने से मन भगवन्मय हो जाता है, फिर सुख-दुःख का इतना प्रभाव नहीं होता है। जैसे कोई दरिया की ओर चल दे तो पहले तो दरियाई हवाएँ लगती हैं। ज्यों दरिया के नजदीक जायेगा त्यों नमीयुक्त हवा लगती है। ज्यों आगे बढ़ता जायेगा त्यों पहले तो पैर भीगेंगे, फिर आगे बढ़ते-बढ़ते दरियाई पानी में खोता जायेगा। वैसे ही भगवान की ओर बढ़ते रहने से, उनके स्मरण-चिंतन से हमारा मन भगवन्मय होता जायेगा, भगवान की प्रीति में डूबता जायेगा-खोता जायेगा। फिर दुःख आये चाहे सुख आये, मित्र मिले चाहे शत्रु मिले - ये सब वृत्तियाँ गौण हो जाती हैं।

दुःखाकार वृत्ति, शत्रु आकार वृत्ति कोई महत्त्व नहीं रखती है और एक भगवदाकार वृत्ति मुख्य हो जाती है। तब भगवान का ऐश्वर्य, भगवान का ज्ञान, भगवान की शांति, भगवान का माधुर्य, भगवान का सुख हमारे मन में पनपने लगता है। उसके आगे संसार के सुख-ऐश्वर्य कोई मायना नहीं रखते हैं।

अतः भगवान के चिंतन-स्मरण से, प्रीति से भगवान के ज्ञान और माधुर्य को अपने जीवन में छलकायें और कृतकृत्य हो जायें। (कृतकृत्य = मनुष्य-जन्म में करने योग्य कर लिया।) जो काम करने के लिए आये हैं उसमें सफल हो जायें। ❐

ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मध्यान व ब्रह्मविचार में अंतर

- पूज्य बापूजी

जो ब्रह्मज्ञान नहीं समझ सकते उन्हें ब्रह्मध्यान करना पड़ता है। जो ब्रह्मध्यान भी नहीं कर सकते उन्हें ब्रह्मभावना करनी पड़ती है - 'सोऽहम्' अर्थात् मैं वही (परब्रह्म परमात्मा) हूँ। जिन्होंने परमात्मा को तत्त्वरूप से समझ लिया है उन्हें 'सोऽहम्-सोऽहम्' करने की जरूरत नहीं रहती। 'मैं आसाराम हूँ, आसाराम हूँ' तब तक कहूँगा जब तक पक्का नहीं हो रहा है। पक्का हो गया मैं आसाराम हूँ फिर 'मैं आसाराम हूँ, आसाराम' कहूँगा तो अंदर कच्चाई है, कुछ खटक हो रही है कि शायद भूल न जाऊँ। ऐसे ही जो लोग नहीं जपते हैं उनकी अपेक्षा जप करनेवाले ठीक हैं। जो जप करते हैं उनकी अपेक्षा 'सोऽहम्' जपनेवाले ठीक हैं लेकिन 'सोऽहम्' जपनेवालों से भी 'सोऽहम्' तत्त्व को समझकर, उसको अपना स्वरूप समझकर जो निश्चिंत हो गये उनको हमारा प्रणाम है। ❐

योगवासिष्ठ अमृत बिन्दु

❋ यह संसारानुराग अत्यन्त विषम (क्लेशदायक) है। यह निःशंक ही संसार में आये हुए पुरुषों को साँप के समान डँसता है, तलवार के समान काटता है, भाले के समान बेधता है, रस्सी के समान जकड़ देता है-हाथ-पैर बाँध देता है, अग्नि के समान जलाता है, रात्रि के समान अंधा बना डालता है, सिर पर गिरे हुए पत्थर के समान मूर्च्छित कर देता है, विचारदृष्टि को हर लेता है, मर्यादा को नष्ट कर डालता है, पुरुष को मोहरूप अंधकूप में गिरा देता है। इस संसार में तृष्णा मनुष्य को जर्जर कर डालती है अर्थात् जैसे रस निकालने के लिए सोम रगड़कर निचोड़ा जाता है, वैसे ही मनुष्यों के अंग-प्रत्यंग को शिथिल कर डालती है। बहुत क्या कहें, ऐसा कोई दुःख नहीं है, जो संसारी पुरुष को प्राप्त न हो।

❋ साधु पुरुषों का समागम होने पर आत्मीय जन व धन से शून्य दुःखपूर्ण स्थान धन तथा जन से परिपूर्ण हो जाता है, मृत्यु भी उत्सव में परिणत हो जाती है और आपत्तियाँ सम्पत्तियों की तरह मालूम होती हैं।

❋ जैसे दरिद्र पुरुष मणियों को बड़े प्रेम से देखते हैं, वैसे ही जिनका चित्त विश्रान्तिसुख से परिपूर्ण है, ऐसे धन्य साधु पुरुषों के बड़े प्रयत्न से दर्शन करने चाहिए।

❋ मनोनाश के लिए तपस्या आदि क्लेश उपयोगी नहीं हैं। विवेक से संस्कृत (शुद्ध) हुआ मन अपने पूर्वकालीन संकल्प-विकल्प अंश का परित्याग कर ब्रह्माकार विस्तारवाला आत्म-साक्षात्कार वृत्तिरूप अपना परिणाम करता है। मन का विनाश होना परम पुरुषार्थ की प्राप्ति है और सब दुःखों के समूल नाश का उदय है। इसलिए आप मन के नाश के लिए प्रयत्न कीजिये, मन के बाह्य व्यापार में प्रयत्न मत कीजिये। ❐

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

प्रश्न : सबसे बड़ा सुहृद (मित्र) कौन है ?

उत्तर : परमात्मा ।

प्रश्न : सबसे बड़ा (ऊँचा) ज्ञान क्या है ?

उत्तर : आत्मज्ञान ।

प्रश्न : सबसे बड़ा बल कौन-सा है ?

उत्तर : सत्य का बल ।

प्रश्न : सबसे बड़ा पुण्य क्या है ?

उत्तर : परोपकार ।

प्रश्न : सबसे सच्चा (पक्का) संबंध किसका है ?

उत्तर : आत्मा-परमात्मा का ।

प्रश्न : सबसे निःस्वार्थ संबंध किसका है ?

उत्तर : सद्गुरु-सत्शिष्य का ।

प्रश्न : श्रीकृष्ण की बंसी में कौन-सा बीजमंत्र गूँजता था कि सुननेवाले दीवाने हो जाते थे ?

उत्तर : **'क्लीं'** बीजमंत्र ।

प्रश्न : शक्ति और सामर्थ्य किससे आता है ?

उत्तर : शांति और ध्यान से ।

प्रश्न : शक्ति का ह्रास किससे होता है ?

उत्तर : संसार के भोगों व काम-विकार से ।

प्रश्न : सबसे बड़ा तप क्या है ?

उत्तर : एकाग्रता ।

प्रश्न : सबसे बड़ी पराधीनता क्या है ?

उत्तर : सबसे बड़ी पराधीनता है कि किसी वस्तु, व्यक्ति के बिना हम नहीं रह सकते ।

प्रश्न : सबसे बड़ा कृपण कौन है ?

उत्तर : जो व्यक्ति संसार के लिए खप रहा है और भगवान के लिए समय नहीं देता, वह सबसे बड़ा कृपण है ।

प्रश्न : सबसे उत्तम संगीत क्या है ?

उत्तर : अजपा गायत्री ।

प्रश्न : अजपा गायत्री करने की विधि क्या है ?

उत्तर : श्वास अंदर आये तब **'सो'** और बाहर जाय तो **'हं'** का मानसिक जप करें, इसे बोलते हैं अजपा गायत्री । इस प्रकार के जप के बिना एक भी श्वास अंदर या बाहर नहीं जाना चाहिए ।

प्रश्न : सबसे बड़ा वैद्य कौन है ?

उत्तर : उपवास ।

प्रश्न : मनुष्य कब जागता है ?

उत्तर : जब संसार का सुख, ऐश-आराम फीका (तुच्छ) लगे और भगवान में प्रीति हो जाय तब मनुष्य जागता है ।

प्रश्न : सबसे बड़ी स्वाधीनता क्या है ?

उत्तर : अपने आपमें आनंदित रहें, अपने आपमें तृप्त रहें । अपने सुख के लिए किसीकी जरूरत न रहे । यह सबसे बड़ी स्वाधीनता है ।

दिले तस्वीर है यार,
जबकि गर्दन झुका ली और मुलाकात कर ली। ❑

महत्त्वपूर्ण निवेदन

सदस्यों के डाक-पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा । जो सदस्य १७९वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया सितम्बर २००७ के अंत तक अपना नया पता भेज दें ।

हे नर ! दीनता को त्याग

- पूज्य बापूजी

दीनता कूं त्यागि नर अपनो स्वरूप देखि।
तू तो शुद्ध ब्रह्म अज दृश्य को प्रकाशी है ॥

(विचारसागर : ६.१२)

हे मानव ! तू चैतन्यस्वरूप आत्मा है जो दृश्य को प्रकाशित करता है और फिर तू ही उससे प्रभावित होकर फँसता है। जैसे ठूँठे पेड़ में कल्पना करके तू ही चोर बनाता है और तू ही डरता है, रस्सी में साँप तू ही पैदा करता है और तू ही उससे थर-थर काँपता है, ऐसे ही शुद्ध चैतन्य, परब्रह्म चेतना में, अपने स्वरूप में तू अपनी कल्पना लाकर आप ही फँसता है। जैसे कुशवारी अपने ही शरीर से जाला पैदा करती है और आप ही उसमें फँस मरती है, ऐसे ही तुम अपने ही चित्त से कल्पनाएँ बनाकर आप ही उन कल्पनाओं में फँस जाते हो कि 'ऐसा नहीं करेंगे तो वह क्या कहेगी ? लोग क्या कहेंगे ? इतना तो करना ही चाहिए । यह मेरा फर्ज है...।' ये सब तुम्हारे फर्ज हैं लेकिन ये फर्ज आये कहाँ से ?

कल्पनावालों के कल्पना के जगत से तुम भी अपने ऊपर कल्पना थोप रहे हो । पहले-में-पहला फर्ज यह है कि तुम अपनेको जरा जान लो। भगवान ने जगत बनाया, भगवान ज्ञानस्वरूप हैं तो वे हम लोगों के दुश्मन हैं कि मित्र हैं ?

परम हितैषी हैं। यह जगत परमात्मा ने, हमारे परम हितैषी ने बनाया, फिर इस जगत में इतनी परेशानी कैसे आयी ?

जगत में परेशानी नहीं है किंतु **यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।** (गीता : ६.२६) चंचल व अस्थिर मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ अपनी कल्पना की उलटी करके, कल्पनाओं का बोझ सिर पर लेकर परेशान होता है, नहीं तो जगत में कोई परेशानी है ही नहीं । अगर मनुष्य मौज में रहना चाहता है तो हर परिस्थिति आनंददायक है पर मनुष्य का मन कल्पनाओं के अनुसार अपना जीवन देखना चाहता है। कल्पना होती है अविद्या से और अविद्या का कोई ठोस आधार नहीं है । इसलिए कल्पना के अनुसार मनुष्य का जीवन बन जाता है, अपनी कल्पना के अनुसार कहीं पहुँच भी जाता है तो भी देखता है कि और कुछ माँग चालू है ।

यह कई लोगों का भ्रम है, नासमझी है कि जगत की वस्तुओं के बिना, जगत के पदार्थों के साथ संबंध जोड़े बिना हम जी नहीं सकते। वेदांत यह बताता है कि जगत के पदार्थों से संबंध तोड़े बिना तुम जी नहीं सकते ।

सब वस्तुओं से संबंध तोड़ते हो तब तुम सोते हो और नींद में कुछ शक्ति प्राप्त करते हो तब दूसरे दिन जीने के काबिल बनते हो। जगत से संबंध जोड़े बिना तो जी सकते हैं किंतु तोड़े बिना जी नहीं सकते । रात्रि की नींद के लिए भी नश्वर पदार्थों से, नश्वर संबंधों से, मित्रों-कुटुम्बियों से, पति से, पत्नी से, सबसे संबंध तोड़ते हो तब तुम नींद का सुख लेते हो और ताजे हो जाते हो, जीने की योग्यता ले आते हो, ऐसे ही जगत से संबंध हटाकर, कल्पनाओं से बचकर नींद के बजाय समाधि में चले जाओ तो सदा के लिए सुखमय जीवन पा लोगे ।

जगत के संबंधों से समय बचाकर यदि तुम स्वरूप में चले जाओ, आत्मा में स्थित हो जाओ तो तुम अनन्त काल का जीवन पा लेते हो । फिर तुम्हारा कभी अंत नहीं हो सकता । देह का अंत तो अवश्यम्भावी है, सबका **(शेष पृष्ठ २७ पर)**

मन को सीख

- ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

मन बहुत ही चंचल है । मन को वश करना अत्यंत कठिन है परंतु अभ्यास से यह भी सरल हो जाता है । हमें प्रतिदिन अपने कर्मों को याद करना चाहिए तथा अशुभ या पाप कर्मों के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए । मन को समझाना चाहिए कि 'हे मन ! तूने आज तक कितने ही अपराध किये, इन्द्रियों को विकारी बनाया, बुरे मार्ग पर ले गया, अधःपतन और बरबादी की । आश्चर्य तो यह है कि जीवन के अनमोल वर्ष बीत जाने पर भी अभी तक बुरे काम करने से पीछे नहीं हटता । परमात्मा का डर रख। परमात्मा पर विश्वास रख। परमात्मा हमारे प्रत्येक कार्य को देख रहे हैं ।

हे मन ! अगर नहीं समझेगा तो तुझे स्वर्ग में तो क्या नरक में भी स्थान मिलना मुश्किल हो जायेगा। तेरे सर्टिफिकेट और तेरी विद्वत्ता, तेरा ऐहिक ज्ञान दुःखों के सामने जरा भी टिक नहीं सकता । हे मलिन मन ! तूने मेरी अधोगति की है । तूने मुझे विषयों के क्षणिक सुख में घसीटकर वास्तविक सुख से दूर रख के मेरे बल, बुद्धि और तंदुरुस्ती का नाश किया है। तूने मुझसे जो अपराध करवाये हैं, वे अगर लोगों के सामने खोल दिये जायें तो लोग मुझे तिरस्कार व धिक्कार से फटकारेंगे ।

हे मलिन मन ! मैंने तेरे संग से बुरे कर्म व बुरे संकल्प किये तो आज मुझे बुरा कहा जाता है। जिन्हें मेरे दुष्कर्मों का पता है, उनके समक्ष मैं मस्तक कैसे ऊँचा कर सकूँगा ? अभी भी समझता नहीं है और मुझे बुरे काम के लिए घसीट रहा है !

हे दयालु परमात्मा ! मुझे धीरज व सद्बुद्धि दो । सन्मार्ग बताओ । मेरे मलिन मन ने मेरा नाश किया है । मेरा मनुष्य-जन्म व्यर्थ गया है । मलिन मन शैतान है ।' इस प्रकार मन को सदा समझाते रहोगे तो मन की डोर टूटेगी और मन काबू में आयेगा । सत्य, न्याय और ईमानदारी के मार्ग पर चलोगे तो उद्धार कठिन नहीं है ।

मन पर कभी विश्वास न रखो, मन को स्वतंत्रता दोगे तो तुम्हारी नौका खतरे में आ जायेगी । जैसे हाथी को नियंत्रण में रखने के लिए अंकुश की आवश्यकता रहती है, वैसे ही मन को वश में रखने के लिए सदा सत्संग, सत्चिंतन, सत्पठन करो, जीवन में उतारो । समय-सारणी बनाकर मन को बाँधो, एक मिनट भी मन को खाली न होने दो । जीवन के प्रत्येक पल को नियमितता की जंजीर से बाँध दो । जो समय बरबाद हो गया हो, उसके लिए हृदयपूर्वक पश्चात्ताप करो । परम कृपालु परमात्मा बहुत ही दयालु हैं । उनकी शरण में जाओगे तो वे तुम्हारी रक्षा करेंगे । हम मानव तो हैं परंतु मानवता खो बैठे हैं, निरी पशुता देखने में आती है। सच्चा मानव बनने के लिए जीवन को संयमी बनाओ । **मनसा सीव्यति इति मनुष्यः** - जो मन से परमात्मा से संबंध जोड़ सके वही मनुष्य है ।

प्रभु सबको सद्बुद्धि दें और सच्चा मानव बनायें । हरि ॐ शांति...

(आश्रम द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'निरोगता का साधन' से) ❐

(पृष्ठ २६ का शेष) होता ही है और मजे की बात है कि सब देह की मौत से डरते हैं, उससे बचने की कोशिश करते हैं परंतु आज तक कोई बच पाया नहीं । मौत से वे ही बच पाये हैं जिन्होंने देह से परे निर्वासनिक नारायणस्वरूप अपने आत्मा में स्थिति कर ली है । देह की मौत अपनी मौत न मानकर अमरता को जान लो, दुबारा जन्म नहीं तो मौत कहाँ ? ❐

ध्यान योग शिविर में पूज्यश्री का शिविरार्थियों को उद्‌बोधन

साधना के मार्ग में प्रगति होने से एक के बाद एक रहस्य खुलते जाते हैं। तुम सब भाग्यशाली हो कि इस परम आश्चर्य के पथ पर आ चुके हो। जो समझदार हैं, इसकी कद्र कर सकते हैं वे इशारे में समझ जाते हैं। तुम्हें खुशी होती होगी कि इस अमृत का स्वाद मिला और साथ में दुःख भी होता होगा कि घर में ही खजाना गड़ा होने पर भी इतने दिनों तक भिखारी ही रहे।

छोटी-बड़ी सफलताओं के लिए, नौकरी में पदोन्नति के लिए, व्यापार-धंधे में मुनाफे के लिए तुम्हारा मन आकर्षित नहीं होता है तो समझो कि साधना में तुम्हारी प्रगति हो रही है। साधना में प्रगति करने के सिवाय जीवन में अन्य कर्तव्य क्या है ? अन्य व्यवहार चाहे कितने ही करो परंतु वे सब शरीर के इर्द-गिर्द ही होंगे। यह शरीर कब तक टिकेगा ? ६०-७०-८० वर्ष अथवा अधिक-से-अधिक १०० वर्ष तो हद हो गयी। मौत कब आ जाय, कुछ कह सकते हो ? अतः समय मत गँवाओ। संसार के फँदे से मुक्त हो जाओ। लोहे की जंजीर तो तुम तुरंत तोड़ दोगे क्योंकि पसंद नहीं है परंतु सोने की जंजीर तोड़ना कठिन है, वह बंधन प्यारा लगता है। रागी को उसमें सोना दिखता है, विरागी को उसमें जंजीर दिखती है। विशाल गगन में विहार करनेवाले, मुक्तावस्था का स्वाद जाननेवाले विहंग को सोने का पिंजड़ा भी तड़पाता है। विचारवान बनो, विवेक विकसित करो और बंधनों में उलझे बिना संसार-सागर को पार करो। प्रगति की पराकाष्ठा आती है तब साधक आश्चर्यचकित हो जाता है। ऐसा कोई भोग न था, जिससे राजा जनक अपरिचित हों परंतु जब वे ज्ञान की पराकाष्ठा तक पहुँचे, तब आनंद से पुकार उठे : ''आश्चर्य ! गुरुदेव ! आश्चर्य !! परम आश्चर्य !!! मेरे पास क्या था इसका मुझे ही पता न था... !''

यह आत्मज्ञान की मस्ती दबा नहीं सकते, किसी भी प्रकार उछलकर बाहर आ ही जाती है और सम्पूर्ण जीवन को प्रकाशित कर देती है। फिर ऐसा लगता है कि मुझ मूर्ख ने खोपड़ी में कैसी-कैसी मान्यताएँ भर रखी थीं ? जिसे ढूँढ़ने के लिए बाहर भटक रहा था वह तत्त्व तो मेरे अंदर ही छुपा था। मैं स्वयं सच्चिदानंद था, मुझे मालूम न था।

साक्षात्कार होने पर जन्मों-जन्मों की एकत्रित मान्यताएँ चकनाचूर हो जाती हैं, इसमें आश्चर्य नहीं है। घर में अंधकार व्याप्त था, जगह-जगह जाले हो गये थे, अब प्रकाश भी हुआ और सफाई भी हुई। भवन स्वच्छ हो गया। वामन में छुपा हुआ विराट प्रकट हो गया। कैसा आश्चर्य ! घर में बिजली के १०० वॉट के गोले के बदले १००० वॉट का गोला रखने से प्रकाश बढ़े तब भी उसका आश्चर्य नहीं होता है परंतु आकाश का सूर्य घर में उतर आये तो आश्चर्य होता है। छः हजार रुपये के पगारदार नौकर को बारह हजार रुपये की नौकरी मिले तो आश्चर्य नहीं होगा परंतु उसके घर के टूटे-फूटे छप्पर से हीरे-मोती की वर्षा होने लगे तो आश्चर्य होगा। साक्षात्कार इन सब आश्चर्यों का बाप है, परम आश्चर्य है।

तत्त्ववेत्ताओं के लिए इस जगत में कोई आकर्षण नहीं रहता। विश्व भर के उत्तम पदार्थ मिलें, स्वर्ग का राज्य, अप्सराएँ मिलें तब भी तत्त्ववेत्ता चलित नहीं होता क्योंकि उसे परम तृप्ति हो गयी है। त्रिगुणातीत होने के लिए तो त्रिगुणातीत महापुरुष का धक्का अनिवार्य है। वे धक्का लगा सकें तुम्हारी इतनी भूमिका तैयार हो जाय, तब तक त्याग और वैराग्य विकसित करो। विवेक-वैराग्य के लिए यह अनिवार्य शर्त है। ❑

उदराकर्षासन

इस आसन में उदर अर्थात् पेट को आँतों सहित भलीभाँति खींचते हैं, इसलिए इसे 'उदराकर्षासन' कहते हैं।

विधि : जमीन पर दोनों पैरों के बीच एक फुट का अंतर रखकर बैठें। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रखें। दायें पाँव के घुटने को दायें हाथ से जोर देते हुए जमीन की ओर ले जायें तथा गर्दन व धड़ को अधिक-से-अधिक बायीं ओर घुमायें एवं पीछे देखें। दोनों हाथों को इस अवस्था में भी घुटनों पर ही रखें। पुनः पहले की स्थिति में लौट आयें। इसी प्रकार बायें हाथ से बायें घुटने पर जोर देते हुए जमीन की ओर ले जायें तथा गर्दन एवं धड़ को अधिक-से-अधिक दायीं ओर घुमायें व पीछे की ओर देखें। इस आसन को ५ से १० बार कर सकते हैं।

लाभ : १. पेट की सभी प्रकार की गड़बड़ियों के लिए यह अत्यंत उपयोगी और लाभदायक है।

२. कोष्ठबद्धता (कब्जियत) की शिकायत-वाले को इसे प्रतिदिन करना चाहिए। इससे कब्ज की शिकायत नहीं रहती।

३. अपचं की शिकायत दूर होकर खाना भलीप्रकार पच जाता है।

४. पैरों का दर्द ठीक हो जाता है। पंजों में अधिक बल आता है। इसलिए यह आसन पैदल चलनेवालों के लिए बहुत उपयोगी माना गया है।

५. कमर के नीचे के जोड़ों में किसी प्रकार की खराबी नहीं होती। ❐

प्रेतयोनि से मुक्ति

श्री हनुमानप्रसाद पोद्दारजी जब मुम्बई में रहते थे तबकी घटित घटना है। एक रात वे समुद्र के किनारे बैठकर भजन कर रहे थे। एक पारसी अपनी वेशभूषा में उनके सामने आकर खड़े हो गये और पोद्दारजी से बोले : ''डरते तो नहीं हो ?''

भाईजी : ''डरूँगा क्यों ? आप सज्जन हैं। भले मानुष हैं !''

पारसी : ''मैं मनुष्य नहीं हूँ, प्रेत हूँ। मैं मृत्यु से पूर्व पारसी था। हिन्दू धर्म पर बड़ी श्रद्धा थी। मरने के बाद मैं प्रेत हो गया। अब मेरी यह स्थिति है कि भूख-प्यास तो लगती है किंतु स्वयं लेकर खा-पी नहीं सकता। कोई मेरे लिए दे, तभी मुझे मिलता है। हमारे मजहब में श्राद्ध का विधान है नहीं। इसलिए मेरे पुत्र-पौत्र श्राद्ध नहीं करते। तुम मेरे लिए श्राद्ध करवा दो।''

भाईजी : ''मेरे कहने से आपके पुत्र श्राद्ध कैसे करेंगे ? उनको विश्वास कैसे होगा ?''

प्रेत : ''मैंने अपने घर में अमुक स्थान पर बहुत-से रुपये रखे हैं। घरवालों को मालूम नहीं है। तुम मेरी कही हुई एक संख्या ठीक-ठीक बता देना और कहना कि उससे श्राद्ध करवा दें तो वे मेरा श्राद्ध करवा देंगे।''

भाईजी ने वैसे ही किया। रुपये मिले, श्राद्ध हुआ और वे पारसी प्रेतयोनि से मुक्त हो गये।

सनातन धर्म की परंपरा में श्राद्ध का जो विधान है, वह जीवात्मा के कल्याण की भावना से ओत-प्रोत और युक्तियुक्त तथा ऋषियों की दूरदर्शिता का द्योतक है। चाहे हिंदू हो या पारसी या अन्य, इस परंपरा का निर्वाह अवश्य करना चाहिए।

श्राद्ध-विषयक अधिक जानकारी के लिए आश्रम से प्रकाशित 'श्राद्ध-महिमा' पुस्तक अवश्य पढ़ें और तदनुसार २७ सितम्बर से प्रारंभ श्राद्ध पक्ष में पितरों का श्राद्ध-तर्पण करें। ❐

शरद ऋतु स्वास्थ्यचर्या

(२३ अगस्त से २२ अक्टूबर २००७)

वर्षा ऋतु में जीव-जंतुओं, कीचड़ व मलिन पदार्थों से दूषित हुआ जल शरद ऋतु में दिन में सूर्य की जीवाणुनाशक प्रखर किरणों से निर्विष हो जाता है तथा रात्रि में चंद्रमा की अमृतमय किरणों से व **अगस्त्य तारे के उदय होने के प्रभाव से शीतल, विमल एवं पवित्र हो जाता है।** इसे 'हंसोदक' कहते हैं। हंसोदक से स्नान अमृत के समान फल देनेवाला होता है।

शरद ऋतु में पित्त प्रकुपित व वायु शांत हो जाता है।

जठराग्नि : मध्यम बलयुक्त होती है।

शारीरिक बल : मध्यम होता है।

सेवनीय आहार : अच्छी तरह भूख लगने पर रस में मधुर, कुछ कड़वे व कसैले, शीतल व पित्त को शांत करनेवाले अन्न-पान का उचित मात्रा में सेवन करना चाहिए।

सामान्यतः सभीके लिए पुराने चावल, जौ, मूँग, गेहूँ, ज्वार, करेला, बथुआ, परवल, तोरई, पालक, पका पेठा, नेनुआ, पोई, कोमल ककड़ी, खीरा, टिंडा, बिना बीज के छोटे बैंगन, डोडी (जीवंती), गाजर, शलगम, नींबू, हरा धनिया, गन्ना; फलों में मीठा अनार, मीठे बेर, आँवला, मौसंबी, नारियल, सेब, अमरूद, सीताफल; सूखे मेवों में अंजीर, किशमिश, मुनक्का; मसालों में जीरा, धनिया, इलायची, अल्प मात्रा में लौंग, दालचीनी तथा दूध, मक्खन व घी का उपयोग लाभदायी है।

अनुकूल विहार : शरद ऋतु में प्रदोषकाल में अर्थात् रात्रि के प्रथम प्रहर में (सूर्यास्त के बाद ३ घंटे तक) चंद्रमा की शीतल किरणों का सेवन करना खूब लाभदायी है परंतु देर रात तक जागरण न करें। अन्यथा पित्त प्रकुपित हो जाता है। इस ऋतु में उत्पन्न फूलों से बनी माला का धारण तथा चंदन का लेप, मुलतानी मिट्टी से स्नान लाभदायी है।

त्याज्य आहार-विहार : इन दिनों में अधिक उपवास, अधिक श्रम, धूप का सेवन, तेल, क्षार, दही, खट्टे, तीखे, नमकीन, उष्ण पदार्थों का सेवन, दिन में शयन एवं पूर्व दिशा की वायु का सेवन नहीं करना चाहिए। पूर्वी हवा बंगाल की खाड़ी से उठने के कारण नमीयुक्त होती है। इसके सेवन से पुराना संधिवात, दमा आदि व्याधियाँ पुनः उत्पन्न होने की संभावना होती है।

शरद ऋतु में घृतपान : पित्त अग्नि का अधिष्ठान है अर्थात् शरीर में अग्नि पित्त के आश्रय से रहती है। शरद ऋतु में प्रकुपित पित्त में द्रव अंश अधिक हो जाने के कारण अग्नि मंद हो जाती है। जैसे उष्ण जल अग्नि सदृश होने पर भी अग्नि को बुझा देता है, वैसे ही द्रवीभूत पित्त अग्नि को मंद कर देता है। घी उत्तम अग्नि-प्रदीपक व श्रेष्ठ पित्तशामक है **(पित्तघ्नं घृतम्)**। अतः शरद ऋतुजन्य पित्तप्रकोप व मंदाग्नि के लिए सुबह खाली पेट घी का सेवन लाभदायी है। सुबह सूर्योदय के बाद १५-२० ग्राम गुनगुना गौघृत पीकर ऊपर से गरम पानी पीयें। (डेयरी व बाजार का घी इतना भरोसे का पात्र नहीं रह गया है।) इसके बाद १-२ घंटे तक कुछ न लें। बाद में भूख लगने पर दूध ले सकते हैं। साधारण घी की अपेक्षा औषधसिद्ध घी जैसे शतावरी घृत,

पंचतिक्त घी आदि विशेष लाभदायी हैं।

* रात को ३ से ५ ग्राम त्रिफला चूर्ण गुनगुने पानी के साथ लेने से सुबह मल के साथ अतिरिक्त पित्त का निष्कासन हो जाता है।

* पित्त विरेचन हेतु सुबह २-३ ग्राम हरड़ चूर्ण में समभाग मिश्री मिलाकर लेने से भी लाभ होता है।

* भाद्रपद (२९ अगस्त से २६ सितम्बर) में कड़वे पदार्थ जैसे करेला व मेथी की सब्जी, नीम तथा गिलोय की चटनी आदि का सेवन अवश्य करना चाहिए। भाद्रपद में लौकी व दही का सेवन निषिद्ध है।

* एक चम्मच मिश्रीयुक्त आँवला चूर्ण (आश्रम में उपलब्ध) में १ चुटकी तुलसी के बीज मिलायें। इसे पानी में मिलाकर पीने से पित्त का शमन तो होगा ही, साथ में शक्ति, स्फूर्ति व ताजगी भी आयेगी। यह प्रयोग वार्धक्य निवृत्ति, पेट के कई प्रकार के रोगों की निवृत्ति व चेहरे पर लाली लाने में बड़ा सुखदायी साबित हुआ है। (रविवार के दिन न लें।) ❑

पुण्य व स्वास्थ्य प्रदाता आँवला

'पद्म पुराण' के एक प्रसंग में भगवान शंकर कार्तिकियजी से कहते हैं : ''बेटा ! आँवले का फल परम पवित्र है। यह भगवान श्री विष्णु को प्रसन्न करनेवाला एवं शुभ माना गया है। आँवला खाने से आयु बढ़ती है। इसका रस पीने से धर्म का संचय होता है और रस को शरीर पर लगाकर स्नान करने से दरिद्रता दूर होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। स्कन्द ! जिस घर में आँवला सदा मौजूद रहता है, वहाँ दैत्य और राक्षस नहीं आते। जो दोनों पक्षों की एकादशियों को आँवले के रस का प्रयोग कर स्नान करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। षडानन ! आँवले के रस से अपने बाल धोने चाहिए। आँवले के दर्शन, स्पर्श तथा नामोच्चारण से भगवान विष्णु संतुष्ट होकर अनुकूल हो जाते हैं। अतः अपने घर में आँवला अवश्य रखना चाहिए। जो भगवान विष्णु को आँवले का बना मुरब्बा एवं नैवेद्य अर्पण करता है, उस पर वे बहुत संतुष्ट होते हैं। आँवले का सेवन करनेवाले मनुष्यों को उत्तम गति मिलती है। प्रत्येक रविवार, विशेषतः सप्तमी को आँवले का फल त्याग देना चाहिए। शुक्रवार, प्रतिपदा, षष्ठी, नवमी, अमावस्या और संक्रांति को आँवले का सेवन नहीं करना चाहिए।''

आयुर्वेद के अनुसार आँवला रक्तप्रदर, बवासीर, नपुंसकता, हृदयरोग, मूत्ररोग, दाह, अजीर्ण, श्वास रोग, खाँसी, दस्त, पीलिया एवं क्षय जैसे रोगों में लाभदायी है। यह रस-रक्तादि सप्तधातुओं को पुष्ट करता है। इसके सेवन से आयु, स्मृति, कांति, बल, वीर्य एवं आँखों का तेज बढ़ता है; हृदय एवं मस्तिष्क को शक्ति मिलती है; बालों की जड़ें मजबूत होकर बाल काले होते हैं। इससे रक्त शुद्ध होता है और रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने आँवले पर शोध के पश्चात् स्वीकार किया है कि आँवले में पाया जानेवाला एंटीऑक्सीडेंट एन्जाइम बुढ़ापे को रोकता है। परिपक्व, पुष्ट, ताजे आँवलों का सेवन सबके लिए लाभप्रद है। इनके अभाव में आँवले का चूर्ण, मुरब्बा तथा च्यवनप्राश वर्ष भर उपयोग में लाये जा सकते हैं। ❑

पंचतिक्त घी आदि विशेष लाभदायी हैं ।

* रात को ३ से ५ ग्राम त्रिफला चूर्ण गुनगुने पानी के साथ लेने से सुबह मल के साथ अतिरिक्त पित्त का निष्कासन हो जाता है ।

* पित्त विरेचन हेतु सुबह २-३ ग्राम हरड़ चूर्ण में समभाग मिश्री मिलाकर लेने से भी लाभ होता है ।

* भाद्रपद (२९ अगस्त से २६ सितम्बर) में कड़वे पदार्थ जैसे करेला व मेथी की सब्जी, नीम तथा गिलोय की चटनी आदि का सेवन अवश्य करना चाहिए । भाद्रपद में लौकी व दही का सेवन निषिद्ध है ।

* एक चम्मच मिश्रीयुक्त आँवला चूर्ण (आश्रम में उपलब्ध) में १ चुटकी तुलसी के बीज मिलायें । इसे पानी में मिलाकर पीने से पित्त का शमन तो होगा ही, साथ में शक्ति, स्फूर्ति व ताजगी भी आयेगी । यह प्रयोग वार्धक्य निवृत्ति, पेट के कई प्रकार के रोगों की निवृत्ति व चेहरे पर लाली लाने में बड़ा सुखदायी साबित हुआ है । (रविवार के दिन न लें ।) ❑

पुण्य व स्वास्थ्य प्रदाता आँवला

'पद्म पुराण' के एक प्रसंग में भगवान शंकर कार्तिकेयजी से कहते हैं : ''बेटा ! आँवले का फल परम पवित्र है । यह भगवान श्री विष्णु को प्रसन्न करनेवाला एवं शुभ माना गया है । आँवला खाने से आयु बढ़ती है । इसका रस पीने से धर्म का संचय होता है और रस को शरीर पर लगाकर स्नान करने से दरिद्रता दूर होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । स्कन्द ! जिस घर में आँवला सदा मौजूद रहता है, वहाँ दैत्य और राक्षस नहीं आते । जो दोनों पक्षों की एकादशियों को आँवले के रस का प्रयोग कर स्नान करते हैं, उनके पाप नष्ट हो जाते हैं । षडानन ! आँवले के रस से अपने बाल धोने चाहिए । आँवले के दर्शन, स्पर्श तथा नामोच्चारण से भगवान विष्णु संतुष्ट होकर अनुकूल हो जाते हैं । अतः अपने घर में आँवला अवश्य रखना चाहिए । जो भगवान विष्णु को आँवले का बना मुरब्बा एवं नैवेद्य अर्पण करता है, उस पर वे बहुत संतुष्ट होते हैं । आँवले का सेवन करनेवाले मनुष्यों को उत्तम गति मिलती है । प्रत्येक रविवार, विशेषतः सप्तमी को आँवले का फल त्याग देना चाहिए । शुक्रवार, प्रतिपदा, षष्ठी, नवमी, अमावस्या और संक्रांति को आँवले का सेवन नहीं करना चाहिए ।''

आयुर्वेद के अनुसार आँवला रक्तप्रदर, बवासीर, नपुंसकता, हृदयरोग, मूत्ररोग, दाह, अजीर्ण, श्वास रोग, खाँसी, दस्त, पीलिया एवं क्षय जैसे रोगों में लाभदायी है । यह रस-रक्तादि सप्तधातुओं को पुष्ट करता है । इसके सेवन से आयु, स्मृति, कांति, बल, वीर्य एवं आँखों का तेज बढ़ता है; हृदय एवं मस्तिष्क को शक्ति मिलती है; बालों की जड़ें मजबूत होकर बाल काले होते हैं । इससे रक्त शुद्ध होता है और रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने आँवले पर शोध के पश्चात् स्वीकार किया है कि आँवले में पाया जानेवाला एंटीऑक्सीडेंट एन्जाइम बुढ़ापे को रोकता है । परिपक्व, पुष्ट, ताजे आँवलों का सेवन सबके लिए लाभप्रद है । इनके अभाव में आँवले का चूर्ण, मुरब्बा तथा च्यवनप्राश वर्ष भर उपयोग में लाये जा सकते हैं । ❑

'ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि

श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव का पाँचवाँ व अंतिम चरण गुरुधाम अमदावाद आश्रम में संपन्न हुआ । अन्य चार स्थानों पर गुरुपूर्णिमा दर्शन-सत्संग के बावजूद यहाँ उम्मीद से अधिक भक्तों का आगमन हुआ । सारी व्यवस्थाएँ नन्ही पड़ गयीं । व्यवस्थापकों के मस्तक पर पसीने आ गये लेकिन पूज्य बापूजी के दिशा-निर्देश से चरमराती व्यवस्था भी सँभल गयी ।

अमदावाद में २८ से ३० जुलाई का समय गुरुपूर्णिमा दर्शन-सत्संग के लिए घोषित था लेकिन २६ जुलाई से ही इस गुरुपर्व का शुभारंभ हो गया और ३ दिन के स्थान पर ५ दिन तक दर्शन-सत्संग का सिलसिला चलता रहा । व्यासपूर्णिमा के इस पावन पर्व पर पूज्य बापूजी व्यासपीठ पर विराजमान थे और लंबी-लंबी १० कतारों में लगे भक्त व्यासपीठ के करीब से दर्शन करते, आह्लादित होते, गुजरते जाते। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी सत्संग के प्रभाव से प्रसन्न रहा जा सकता है, यह श्रद्धालुओं में प्रत्यक्ष देखा गया । पूज्यश्री ने स्वस्थ, प्रसन्न और समतायुक्त जीवन जीने का संदेश देते हुए कहा कि

''एकतः सर्वलिंगानि मनसस्तुष्टिरेकतः ।

(अग्नि पुराण : २३०.१३)

'एक मानसिक प्रसन्नता ही सभी शकुनों से बढ़कर है ।'

सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु ।

'सुबह और शाम अर्थात् सदाकाल आप सब प्रसन्नचित्त रहें ।' **(अथर्ववेद)**

यह व्यासपूर्णिमा का रसमय पर्व सबमें एक, एक में सबकी खबर देता है । आपके जीवन में से निर्भीकता खो गयी है तो उसे जगाओ । निराशा, हताशा, पलायनवादी विचारों को मिटा दो । सकारात्मक विचार करो । स्वास्थ्यप्रद भोजन करो । प्रसन्न और निश्चिंत जीवन जीने की कला सीख लो । प्रीतिपूर्वक ईश्वर का सुमिरन करो ।

इस पूर्णिमा का यह संदेश है कि आप अपनी लघुग्रंथियों को खोल दो और अपने छुपे हुए विराट व गुरुत्व के साथ सुबह-शाम स्मृति जगाओ ।'' ❑

तू प्याली ऐसी पी ले, तेरी जिन्दगी सुधर जाये

डायोजिनीज को उनके मित्रों ने महँगी शराब का जाम भरकर दिया । डायोजिनीज ने उसे कचरापेटी में डाल दिया । मित्रों ने कहा : ''इतनी कीमती शराब आपने बिगाड़ दी ?''

''तुम क्या कर रहे हो ?'' डायोजिनीज ने पूछा ।

''हम पी रहे हैं ।'' जवाब मिला ।

डायोजिनीज : ''मैंने जो चीज कचरापेटी में उड़ेली वही चीज तुम अपने मुँह में उड़ेलकर अपना विनाश कर रहे हो । मैंने तो शराब ही बिगाड़ी लेकिन तुम शराब और जीवन दोनों बिगाड़ रहे हो ।''

जाम पर जाम पीने से क्या फायदा, रात बीती सुबह को उतर जायेगी ।
तू हरिरस की प्यालियाँ पी ले, तेरी सारी जिन्दगी सुधर जायेगी ॥

बोतल का दारू दस पीढ़ियों तक विनाशकारी प्रभाव रखता है तो रामनाम की प्यालियाँ इक्कीस पीढ़ियों को पार लगाने का सामर्थ्य रखे, यह स्वाभाविक है ।

Posting at Rishi Prasad PSO between 1st to 14th of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.

गुरुपूर्णिमा पर गुरुवाणी के पूर्ण चन्द्र को पाने के लिए भक्तों का समंदर उमड़ पड़ा ।

1 September 2007
RNP. NO. GAMC 1132/2006-08
WPP LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91
DL(C)-01/1130/2006/08
WPP LIC NO.U(C)-232/2006/08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. MH/MR/14/07
'D' NO. MH/MR/TECH-47/4/07